पुस्तकमालाका परिचय

हेमचन्द्रमोदी-पुस्तकमालाकी यह नौवीं पुस्तक है। इसके पहले आठ पुस्तकें निकल चुकी हैं जिनकी सूची अन्यत्र दी गई है। हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरके संस्थापक श्री नाथूराम प्रेमीके इकलौते पुत्र हेमचन्द्र मोदीका सन् १९४२ में अचानक देहान्त हो गया जिनकी प्रवृत्ति स्वतन्त्र विचार-प्रधान और चिकित्सा-प्रधान थी। विविध विषयोंके अध्ययन मनन करने और उनपर लेख लिखनेका भी उन्हें शौक था। इसलिए उनकी स्मृतिकी रक्षाके लिए इस पुस्तकमालाकी स्थापना की गई और इसमें बुद्धिवादी साहित्य निकालनेका निश्चय किया गया।

इसे हमेशा चालू रखनेके लिए प्रेमीजीने बारह हजार रुपयोंका ट्रस्ट कर दिया और उसकी रजिस्ट्री भी बाम्बे पब्लिक ट्रस्टके अनुसार मई सन् १९५२ को करा दी गई। उसके बाद उन्होंने १९५५ में पाँच हजार रुपया ट्रस्टको और भी सौंप दिये और इस तरह अब ट्रस्टकी पूँजी सत्रह हजार रुपयाके लगभग हो गई है।

यह निश्चय किया गया है कि इस मालाकी पुस्तकें सुलभ मूल्यपर बिना मुनाफेके बेची जाएँ और बिक्रीसे वसूल होनेवाली रकमसे नई नई पुस्तकें प्रकाशित होती रहें।

हेमचन्द्र-मोदी-पुस्तकमालाके प्रकाशन

१ भारतीय संस्कृति और अहिंसा—स्व० धर्मानन्द कोसम्बी, पृ० सं० २८०, मूल्य २)

२ हिन्दू धर्मकी समीक्षा—पं० लक्ष्मणशास्त्री जोशी, तर्कतीर्थ, पृष्ठ १८०, मू० १)

३ जड़वाद और अनीश्वरवाद—पं० लक्ष्मणशास्त्री जोशी, तर्कतीर्थ, पृ० १२४, मू० १)

४ स्वतन्त्र चिन्तन—(इंगरसोलके निबन्धोंका भदन्त आनन्द कौसल्यायनकृत स्वतन्त्र अनुवाद पृ० २००, मू० १॥)

५ नारीका मूल्य—(निबन्ध) शरत्‌चन्द्र चट्टोपाध्याय, दूसरी आवृत्ति, पृ० ८८, मू० ॥=)

६ धर्म और समाज (निबन्ध)—प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलाल संघवी, पृ० २३२, मू० १॥)

७ धर्मके नामपर (निबन्ध)—इंगरसोलके निबन्ध, पृ० १७२, मू० १॥)

८ मराठी सन्तोंका सामाजिक कार्य—डा० विष्णु भिकाजी कोल्ते पृ० १७२, मू० १॥)

९ पार्श्वनाथका चातुर्याम धर्म— पृ० सं० १३६, मू० १)

ग्रन्थकर्ताका परिचय

साधुचरित कोसम्बीजीका जन्म गोवाके पासके साखवल नामक छोटे-से गाँवमें एक सारस्वत ब्राह्मणके घर ९ अक्तूबर १८७६ को हुआ था। २३ वर्षकी अवस्था तक वे साधारण मराठी लिखना पढ़ना ही जानते थे। भगवान् बुद्धकी जीवनी पढ़ कर उनकी बौद्ध धर्मके प्रति जिज्ञासा इतनी बढ़ी कि एक दिन वे भगवान् बुद्धकी ही तरह सहधर्मिणी और घर द्वार छोड़कर निकल पड़े। संस्कृत पढ़नेके लिए पहले वे पूना गये, फिर ग्वालियर और फिर काशी। काशीके अन्न-सत्रोंमें दो वर्ष तक बड़े कष्टसे उदर-निर्वाह करते हुए उन्होंने संस्कृत व्याकरण और साहित्यका अध्ययन किया। इसके बाद वे नेपाल और गया जाकर एक बौद्ध भिक्षुकी सलाहसे सिंहल पहुँचे और कोलम्बोके 'विद्योदय-परिवेण' नामक विद्यापीठके महास्थविर सुमंगलाचार्यसे उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और उन्हींकी अधीनतामें वे पाली ग्रन्थोंका अध्ययन करने लगे।

सिंहलके बाद बर्मा भी गये। इसके बाद वे नेशनल कालेज कलकत्तामें और कलकत्ता यूनिवर्सिटीमें पाली भाषाके अध्यापक नियुक्त हुए। सन् १९१०, १२, २६ और ३१ में हारवर्ड यूनिवर्सिटी (अमेरिका) के प्रोफेसर डा० जेम्स एच० वुड्सने कोसम्बीजीको 'विसुद्धिमग्ग'के सम्पादनके लिए चार बार अमेरिका बुलाकर रक्खा। सन् १९११ से १८ तक वे पूनाके फर्ग्युसन कालेजमें पालीके प्रोफेसर रहे, फिर गुजरात विद्यापीठके पुरातत्त्व मंदिरमें पाली भाषाके आचार्यके रूपमें काम करने लगे। इसके बाद लेनिनग्राड (रूस) में बौद्ध संस्कृतिके अध्ययनके लिए जो संस्था खुली, उसका कार्य करनेके लिए रूस गये। १९३० के प्रारम्भमें भारत लौटते ही सत्याग्रह संग्राममें उन्हें जेल जाना पड़ा। इसके बाद १९३४ में आप बनारस गये। १९३७ में बिड़ला-बन्धुओंकी सहायतासे परेलमें 'बहुजन विहार' की स्थापना हुई और उसमें आप लगभग दो वर्ष तक रहे। ४ जून '४७ को सेवाग्राम (वर्धा) में आपका शरीरान्त हो गया।

धर्मानन्द-स्मारक ट्रस्टके प्रकाशन

(मराठी)

१	बोधिसत्व	१॥)
२	पार्श्वनाथचा चातुर्याम धर्म	१॥।)
३	लघुपाठ	।)
४	सुत्तनिपात	५)

निवेदन

इस पुस्तकमालाके प्रथम पुष्पके रूपमें 'भारतीय संस्कृति और अहिंसा' का प्रकाशन हुआ था। उसके लेखक स्व० धर्मानन्दजी कोसम्बीकी ही यह दूसरी पुस्तक नौवें पुष्पके रूपमें पाठकोंके हाथमें जा रही है। दुःख है कि हम इसे उनके जीते जी प्रकाशित नहीं कर सके। उन्होंने इसकी मूल मराठी प्रतिलिपि भी हमारे पास भिजवाई थी कि हम उसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करें, परन्तु उस समय यह न हो सका। मराठीमें भी यह सन् १९४९ में, उनके शरीरान्तके बाद, ही निकली और उसके आठ वर्ष बाद अब यह हिन्दीमें प्रकाशित हो रही है।

'भारतीय संस्कृति और अहिंसा'के 'श्रमण संस्कृति' नामक अध्यायमें महावीर और पार्श्वनाथकी जो चर्चा की गई है उसीको विस्तृत करके और तत्सम्बन्धी अनेक नये तथ्योंको शामिल करके यह पुस्तक लिखी गई है और बहुत स्वतन्त्रतासे लिखी गई है। कोसम्बीजी बहुत ही निर्भीक और साहसी विचारक थे। उन्होंने अपने दीर्घकालव्यापी अध्ययन और अनुभवके अनुसार जो कुछ ठीक मालूम हुआ, वह लिखा और विचारकोंके लिए एक नया रास्ता दिखाया।

'भारतीय संस्कृति और अहिंसा' के प्रारम्भमें प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलालजी संघवीने जो २० पृष्ठोंका विस्तृत 'अवलोकन' लिखा है। पाठकोंसे निवेदन है कि वे उसे अवश्य पढ़ जाएँ; उसमें कोसम्बीजीकी अनेक स्थापनाओंके गुण-दोषोंकी बड़ी स्पष्ट और सहानुभूतिके साथ आलोचना की गई है और वह इस पुस्तकपर विचार करते समय विशेष उपयोगी होगी।

यह पुस्तक अबसे ग्यारह वर्ष पहले लिखी गई थी, जब कि दूसरा महायुद्ध समाप्त हो गया था। उस समय अणुबमका आविष्कार हो चुका था और मानव-कल्याणके इच्छुक लोग सोवियट रशियाकी ओर बड़ी आशासे देख रहे थे। तीस वर्षके क्रान्तिकालमें सोवियट रशियाने जिस

समाजवादी व्यवस्थाका विस्तार किया था और इतने थोड़े समयमें समूचे देशमें जो औद्योगिक विकास तथा वैज्ञानिक उन्नति की थी और फासिज्म विरोधी युद्धमें जिस लगनके साथ रशियनोंने अपनी पितृभूमिकी रक्षा की थी, उससे प्रभावित होकर लोग आशा करने लगे थे कि संसारमें शान्तिकी स्थापना और जन-कल्याणका काम सोवियट रूस और उसकी सामाजिक व्यवस्थाके द्वारा ही हो सकेगा। यह आशा निर्मूल भी नहीं थी।

परन्तु युद्धोत्तर कालमें परिस्थिति बदली और रशियाके युद्धकालीन मित्रोंके साथ उसका संघर्ष और प्रतियोगिता बढ़ने लगी। शीतयुद्ध (कोल्ड वार) ने जोर पकड़ा। रशिया और अमेरिकामें एटम बम और हाइड्रोजन बम बनना शुरू हो गये। फल यह हुआ है कि आज दोनों देशोंने सारे संसारको सर्वनाशकी विकट परिस्थितिमें लाकर खड़ा कर दिया है।

इन बदली हुई परिस्थितियोंमें मानव-समाजका कल्याण चाहनेवाली जनता अब सोवियट रूससे वह आशा नहीं रखती जो दस वर्ष पहले रखती थी। उसकी सारी आशाओंपर पानी फिर गया है और अब यह शंका होने लगी है कि क्या रशियन समाजवाद मानव-समाजके लिए अन्ततः कल्याणकारी हो भी सकता है?

हमें विश्वास है कि साधुचरित धर्मानन्दजी यदि जीवित होते तो वे अपनी इस पुस्तकमें सोवियट रूसके प्रति निकाले हुए उद्गारोंमें अवश्य ही संशोधन करते। पर वे अब नहीं हैं, इसलिए हम इस बदली हुई परिस्थितिका सूचन-भर यहाँ कर देते हैं।

'धर्मानन्द ट्रस्ट'के अधिकारियोंने हमें इस पुस्तकको हिन्दीमें प्रकाशित करनेकी आज्ञा दी और आचार्य काका कालेलकरने इस कार्यमें सहायता दी, इसलिए हम उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

— प्रकाशक

विषय-सूची

सच्चा समाज-धर्म

साधुचरित धर्मानन्दजी कोसम्बी सनातनी हिन्दुओंकी ब्राह्मण-संस्कृतिमें पले थे; भगवान् बुद्धकी जीवनी बचपनमें ही पढ़कर बुद्धके उपदेशकी ओर वे आकर्षित हो गये और उन्होंने बहुत परिश्रम करके सिलोन, लंका, बर्मा और सियाम जैसे देशोंमें जाकर वहाँका बौद्ध धर्म सीखा और फिर वे बौद्ध विद्याकी परम्पराको स्वदेश वापस ले आये। यद्यपि उन्होंने बौद्ध धर्मकी दीक्षा ली थी; फिर भी बौद्ध धार्मिकोंके वे अन्ध-अनुयायी नहीं बने। बौद्ध विद्याके प्रचारके लिए वे अनेक बार अमेरिका और एक बार रूस भी गये। उस समय उन्होंने वहाँके अर्थमूलक समाज-धर्मका अध्ययन किया। लाला हरदयाल जैसोंके सहवासमें आनेसे समाजवाद और साम्यवादके विषयमें भी उनके मनमें सहानुभूति पैदा हुई। गुजरात विद्यापीठमें आकर वहाँ बौद्ध विद्याका प्रचार करते समय उन्होंने जैन धर्मका भी सहानुभूतिपूर्वक अध्ययन किया। महात्मा गाँधीके सिद्धान्तोंका केवल अध्ययन करके ही वे चुप नहीं बैठे, बल्कि उन्होंने गाँधीजीके आन्दोलनोंमें हिस्सा भी लिया।

इस प्रकार मानवीय समाजपर जिन जिन प्रधान विचारों और धार्मिक प्रवृत्तियोंका प्रभाव पड़ा है, उन सबका आस्थाके साथ अध्ययन करके उनपर उन्होंने अपनी स्वतन्त्र प्रज्ञाका उपयोग किया और अपने परिपक्व अभिप्रायोंका निचोड़ दो तीन ग्रन्थोंमें हमें दिया। बौद्ध-विद्याकी प्राप्ति एवं उसके प्रचारके लिए उन्होंने जो कुछ किया था उसका लेखा-जोखा उन्होंने अपने 'निवेदन' और 'खुलासा' नामक दो आत्म-चरित्रोंमें पेश किया है।

इतने परिश्रमसे प्राप्त की हुई बौद्ध विद्याकी विस्तृत कल्पना देनेके लिए धर्मानन्दजीने मराठीमें कई पुस्तकें लिखी हैं। उन पुस्तकोंपरसे उनकी गहरी विद्वत्ताके साथ ही जन-कल्याणके प्रति उनकी लगन भी प्रकट होती है।

अधिकारयुक्त वाणीसे बौद्ध धर्मका इतना सरल विवेचन अन्य किसीने किया हो, ऐसा दिखाई नहीं देता।

'**भगवान् बुद्ध**' में भगवान् बुद्धके विषयमें सारी विश्वसनीय एवं अद्यतन जानकारी आ जाती है। '**बुद्ध धर्म आणि संघ**' नामक छोटी-सी पुस्तकमें जैसा कि उसके नामसे ही स्पष्ट हो जाता है, उन तीनों बातोंकी, रत्नोंकी, बिल्कुल प्राथमिक जानकारी दी गई है। '**बुद्ध लीला-सार-संग्रह**' नामक उनके अत्यन्त लोकप्रिय ग्रंथके पहले भागमें बुद्धके पूर्व-जन्मोंके सम्बन्धकी जातक-कथाएँ हैं; और साथ ही यह पौराणिक जानकारी भी है कि बोधिसत्वने चरित्रकी विभिन्न पारमिताएँ कैसे प्राप्त कीं। दूसरे भागमें बुद्धकी जीवनी है; और तीसरेमें बुद्धके उपदेश संक्षेपमें दिये गये हैं।

बौद्ध-साहित्यके प्रधान ग्रंथ 'त्रिपिटक'मेंसे विनय पिटकका सारांश उन्होंने '**बौद्ध संघाचा परिचय**'में दिया है।

बौद्धोंमें जिस प्रकरणकी महिमा गीताकी तरह गाई जाती है, उस '**धम्मपद**' का और उसके बाद उतने ही लोकप्रिय ग्रंथ '**बोधिचर्यावतार**'का अनुवाद भी उन्होंने मराठीमें कर दिया है।

बौद्ध लोगोंकी योगमार्ग विषयक यथार्थ कल्पना क्या है, यह धर्मानन्दजीकी '**विशुद्धि मार्ग**' नामक छोटी सी पुस्तकमें अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है।

इनके अलावा उन्होंने और भी कुछ छोटी-बड़ी पुस्तकें लिखी हैं। परन्तु अपने जीवनविषयक और धर्मविषयक परिपक्व विचार उन्होंने अपने तीन स्वतंत्र मौलिक ग्रंथोंमें ग्रथित किये हैं।

किन-किन सामाजिक एवं राजनीतिक कारणोंसे बुद्ध भगवान्ने राज्य-त्याग किया और सन्यास ग्रहण किया, इस सम्बन्धमें उन्होंने अपनी बिल्कुल स्वतंत्र उपपत्ति '**बोधिसत्व**' नामक नाटक ग्रंथमें दी है।

वैदिक कालसे धर्मविचारोंमें कैसे कैसे परिवर्तन हुए धर्मक्रान्तिके साथ-साथ विभिन्न पुरोहित वर्गोंका निर्माण कैसे हुआ और धर्मकी शुद्ध कल्पनाको सम्प्रदायोंके अलग अलग व्यूहोंमेंसे मुक्त होनेमें कैसे कैसे कष्ट उठाने पड़े, यह सब उन्होंने अपनी कल्पनाके अनुसार '**भारतीय संस्कृति**

और अहिंसा' नामक विवादास्पद ग्रंथमें लिखा है और उसके पश्चात् वेदकालके पहलेसे इस देशके ऋषि मुनियोंने जो तपस्यामूलक अहिंसा-धर्म चलाया था उसकी परिणति भगवान् पार्श्वनाथके चातुर्याम धर्ममें कैसे हुई और फिर इसी चातुर्याममूलक समाजधर्मका विस्तार आजतक किस प्रकार होता रहा, सो इस **'पार्श्वनाथका चातुर्याम धर्म'** नामक पुस्तकमें सप्रमाण बतलाया है। यहाँ भी उन्होंने अपने दिलकी खरी-खरी सुनाते समय इस बातकी बिलकुल परवाह नहीं की है कि उससे वाद-विवादोंकी कितनी आँधियाँ उठ खड़ी होंगी।

धर्मका अर्थ है जीवन-धर्म। उसमें व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक जीवन दोनों आते हैं; और सामाजिक जीवनमेंसे आर्थिक राजनीतिक जैसे प्रधान भागोंको टाला नहीं जा सकता। धर्म-शास्त्र अगर सच्चा जीवन-धर्मशास्त्र हो तो वह राजनीति और अर्थनीतिसे दामन बचाकर नहीं चल सकता।

अतः चातुर्यामात्मक समाज-धर्मका ऊहापोह करते समय धर्मानंदजीको समाजवाद, साम्यवाद और गाँधीवादके विषयमें अपने विचार प्रकट करने पड़े हैं और वैसा करते समय कांग्रेस और मुस्लिम लीगके आपसी सम्बन्धों, कांग्रेसकी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति आदि बातोंके बारेमें भी उन्हें लिखना पड़ा है।

उनकी इस आर्थिक और राजनीतिक मीमांसासे सहमत होना सभीके लिए संभव नहीं। विशेष अनुभवोंके बाद अपने विचारोंमें परिवर्तन कर देनेकी तैयारी धर्मानंदजीमें हमेशा रही है। पर इस पुस्तकके सारे विवेचनमें साधुचरित धर्मानन्दजी कोसम्बीकी जनहितकी लगन, निःस्पृहता, साम्प्रदायिक अभिनिवेशका अभाव और चरम कोटिकी सत्यनिष्ठा आदि गुण प्रधानतासे दिखाई देते हैं।

कोई भी धर्म ले लीजिए; उसे ऐहिक दृष्टिसे मजबूत बनानेके लिए उसके अनुयायियोंने उसकी छीछालेदर ही की है। इस विषयमें सनातनी, बौद्ध, जैन, मुसल्मान, ईसाई आदि कोई भी धर्म अपवादात्मक नहीं है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि समाजवाद, साम्यवाद और गाँधीवादके

अनुयायियोंमें ये दोष नहीं आये हैं या नहीं आयेंगे। धर्मानन्दजी कोसम्बीने स्वयं बौद्ध होते हुए भी बौद्ध पंथको कहीं मुआफ नहीं किया है।

महावीर स्वामीने पार्श्वनाथके चातुर्याम धर्मका विस्तार किया। पार्श्वनाथका सम्प्रदाय आज कहीं भी स्वतंत्र रूपसे दिखाई नहीं देता, अतः उनके चातुर्याम धर्मकी साम्प्रदायिक विकृति उपलब्ध नहीं। शायद इसीलिए धर्मानन्दजीको पार्श्वनाथके चातुर्याम धर्मके प्रति विशेष आकर्षण प्रतीत हुआ।

पार्श्वनाथका चातुर्याम धर्म ही महावीरके पंच महाव्रतोंमें परिणत हुआ है। यही धर्म बुद्धके अष्टांगिक मार्गमें और पातंजल योगके यम-नियमोंमें प्रकट हुआ है। गाँधीजीके आश्रम धर्ममें भी प्रधानतया चातुर्याम धर्म ही दृष्टिगोचर होता है। गाँधीजीकी कार्यपद्धति ऐसी प्रतीत होती है कि स्वराज्यकी प्राप्तितक समूचे राष्ट्रको सत्य और अहिंसाकी दीक्षा दी जाय तथा स्वराज्यप्राप्तिके बाद अस्तेय एवं अपरिग्रहमूलक समाज-व्यवस्थाकी प्रस्थापना की जाय; और इस प्रकार ऐहिक एवं पारमार्थिक मोक्षकी प्रति करानेवाला सर्वोदय सिद्ध किया जाय।

वेदान्तके मूलमें भी चातुर्याम धर्म है। यों देखा जाय तो चातुर्याम धर्मका अर्थ है, मनुष्यद्वारा अपनी असामाजिक वृत्तिको दूर करके विश्व-कुटुम्ब-स्थापनाकी पूर्व तैयारी करनेवाला समाजधर्म। समाज-वादको लीजिए या साम्यवादको, प्रजातंत्रको लीजिए या अराज-वादको—सत्य, अहिंसा, अस्तेय अपरिग्रहके चार सामाजिक सद्‌गुणोंके बिना कोई भी समाज रचना स्थायी रूपसे सिद्ध नहीं हो सकेगी। इन चार यामोंके साथ ही, कमसे कम संयमके रूपमें तो ब्रह्मचर्यके पाँचवें यामकी वृद्धि करनी ही होगी और इन सबके मूलमें आत्मौपम्य बुद्धि रखकर उस वृत्तिका विकास विश्वात्मैक्य तक करना ही होगा, यह बात गले उतरनेमें देर नहीं लगेगी।

यदि पुराने धर्मोंको भविष्यमें बनाये रखना हो तो उनके चारों ओर जमे हुए संकीर्णताके अधार्मिक जालको दूर करना ही होगा, और फिर यह साबित करना होगा कि इस समय मनुष्य-जातिके सामने जो महान् एवं कठिन समस्याएँ खड़ी हैं उन्हें सुलझानेका सामर्थ्य इन धर्मोंके

सिद्धान्तोंमें मौजूद है। जैनोंको ऐसा न समझना चाहिए कि उनका अहिंसा-धर्म कुत्तों-बिल्लियोंके प्राण बचाने और आलू-बैंगन न खानेमें ही सम्पूर्ण होता है; बल्कि विश्वव्यापी आर्थिक शोषण, असमानता, अन्याय, और अत्याचारके प्रतिकारमें अहिंसाका प्रयोग कैसे किया जा सकता है और उसे कैसे सफल बनाया जा सकता है, इस कसौटीपर उन्हें अपने अहिंसा-धर्मको खरा उतारकर दिखाना होगा। महात्मा गाँधीने यह कर दिखाया, इसीलिए अहिंसा-धर्म संसारमें सजीव और प्रतिष्ठित हो गया। धर्मज्ञ लोगोंको चाहिए कि वे धर्मकी चर्चाको व्याकरण और तर्कके शास्त्रार्थमेंसे बाहर निकालकर और क्षुद्र रूढ़ियोंको बचानेकी चेष्टा छोड़कर उसे व्यक्ति एवं समाजके समग्र जीवनपर चरितार्थ करके दिखायें। धर्मानन्दजी कोसम्बी द्वारा इस दिशामें किया गया यह पहला ही प्रयत्न है और इसलिए विशेष अभिनन्दनीय है।

इस निबन्धकी प्रस्तावनामें पुराने जमानेके जैनियोंका मांसाहारसम्बन्धी उल्लेख आया है। मेरे देखते हुए यह चर्चा गुजरातमें तीन बार बड़ी कटुताके साथ हुई है। किसीने यह तो नहीं कहा है कि प्राचीन समयमें सभी जैनी मांसाहार करते थे, पर जैन धार्मिक साहित्यमें यह उल्लेख निर्विवाद रूपसे पाया जाता है कि कुछ जैनी मांसाहार करते थे। यह स्वाभाविक है कि आजके धार्मिक लोगोंको इस बातकी चर्चा पसन्द न आए; क्योंकि मांसाहार-त्यागके सम्बन्धमें सबसे अधिक आग्रह आजके जैनियोंका ही है और एक समाजकी हैसियतसे उन्होंने अच्छी तरह उसका पालन भी कर दिखाया है। यह तो कोई कह नहीं सकता कि मांसाहार धर्म्य है। यह साबित करनेकी चेष्टा भी कोई नहीं करना चाहता कि पशुओं, पक्षियों, बकरियों, मुर्गियों, मछलियों, केंकड़ों आदि प्राणियोंको मारकर अपना पेट भरना कोई महान् कार्य है। इस सम्बन्धमें बहस हो सकती है कि आजके ज़मानेमें सार्वत्रिक मांसाहार-त्याग कहाँतक सम्भव है। मानव-जातिकी मन्द प्रगतिको देखते हुए आजकी स्थितिमें मांसाहारी लोगोंको पातकी, क्रूर या अधार्मिक कहना उचित नहीं होगा। परन्तु इस विषयमें कहीं भी दो मत नहीं हैं कि मांसाहार न करना ही उत्तम धर्म है। प्राचीन

कालमें कुछ जैनी प्रकट रूपसे मांसाहार करते थे इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण मिल गया, तो इस लिए कोई यह नहीं कहता कि आजके जैनी मांसाहार करें और न इसकी भी कोई सम्भावना है कि आजके जैनी मांस खानेके लिए पुराने सुबूतका उपयोग करेंगे। जैन धर्मका यह उपदेश असंदिग्ध है कि मांसाहार न करना ही श्रेष्ठ जीवन है।

ऐसी हालतमें पुराने समयकी परिस्थिति क्या थी, इसकी चर्चासे बिगड़नेका वास्तवमें कोई कारण नहीं था। अधिकसे अधिक इतना ही तो साबित होगा कि मांसाहारके विषयमें आजके जैनियोंने महावीर स्वामीके समयकी अपेक्षा काफी प्रगति की है। इसमें बुरा माननेकी क्या बात है?

पण्डित सुखलालजीने जो एक बात सुझाई है, वह भी सोचने-लायक है। वे कहते हैं कि महावीर स्वामीका अहिंसा धर्म प्रचारक धर्म था, इसलिए उसमें समय-समय पर विभिन्न जातियोंका समावेश हुआ है। जिस प्रकार अनेक सनातनी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य महावीर स्वामीका उपदेश सुनकर जैन हुए, उसी प्रकार कई क्रूर, वन्य और पिछड़ी हुई जमातोंके लोग भी उपरत होकर जैन धर्ममें प्रविष्ट हुए थे। ऐसे लोग जैन धर्मका स्वीकार कर चुकनेके बाद भी एक अरसे तक मांसाहार करते रहे हों, तो उसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अतः यह साबित होनेसे कि पुराने समयमें कुछ जैन लोग मांसाहार करते थे, यह अनुमान लगाना गलत होगा कि सभी जैनोंके लिए मांसाहार विहित था। यह बात निर्विवाद है कि मांसाहार-त्यागके विषयमें जैन धर्मने मानवीय प्रगतिमें सबसे अधिक वृद्धि की है। ब्राह्मण धर्म, वैष्णव धर्म महानु-भाव धर्म आदि पन्थोंने भी मांसाहार त्यागका आग्रह दिखाई देता है। इन सबने मिलकर महान् कार्य किया है। परन्तु यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इन सबने मांसाहारी लोगोंके साथ अपना आदान प्रदान बंद करके और रोटी बेटीके व्यवहार पर प्रतिबन्ध लगाकर अपना ही प्रचार कुंठित कर लिया है।

इस बातका प्रमाण नहीं मिलता कि रोटी-बेटीका व्यवहार बंद करनेके बादके कालमें निरामिषभोजी लोगोंने अपने इस तत्त्वका प्रचार कहीं भी सफलतापूर्वक किया हो। इसके विपरीत ऐसे उदाहरण जगह-जगह पाये जाते हैं कि निरामिषभोजी लोग स्वयं ही शिथिल बनकर धीरे धीरे छुप-छिपकर या खुले तौरपर मांस खाने लगे हैं। अहिंसा-धर्म जब तक अग्निके समान उज्ज्वल और पावक होगा, तब तक उसे औरोंके सम्पर्कसे डर नहीं रहेगा। जब यह धर्म रूढिके तौरपर जडताके साथ बने रहनेकी चेष्टा करता है, तभी उसे अपने चारों ओर बहिष्कारकी दीवारें खडी करके अपनी रक्षा करनी पडती है और फिर वह निःसत्व बनकर 'जीता' रहता है।

इस निबन्धके अन्तमें धर्मानन्दजी कोसम्बीने पार्श्वनाथकी मारणानिक सल्लेखनाका थोडा-सा ऊहापोह किया है। पार्श्वनाथकी तरह स्वयं भी इसी प्रकार देहत्याग करनेका सङ्कल्प धर्मानंदजीने कर रखा था और उस-पर अमल करना भी शुरू कर दिया था; परन्तु महात्मा गाँधीने उन्हें इससे परावृत्त किया। मगर एक बार जीनेकी वृत्तिको उन्होंने जो पीछे खींच लिया, तो वह फिर दृढ नहीं बन सकी और इसी लिए उनका देहान्त हो गया। अतः इस मारणातिक सल्लेखनाको तात्त्विक चर्चासे अधिक महत्त्व प्राप्त हो गया है।

मारणातिक सल्लेखनाका अर्थ है प्रायोपवेशन या आमरण उपवास।

अपने हाथों अक्षम्य महापातक हुआ हो तो कई लोग प्रायश्चित्तके तौरपर अन्न-त्याग करके देह-त्याग कर देते हैं। अपनी की हुई प्रतिज्ञाका पालन न हो सकनेके कारण भी लोगोंद्वारा देह-त्याग किये जानेके उदाहरण हम पढते हैं। "विकारी वासना उत्कट हो गई है और संयम नहीं रहा है, इस प्रकारका अनुभव जिसे अपने विषयमें हो जाय और जिसे ऐसा लगने लगे कि उसके हाथों पाप ज़रूर हो जायगा, तब पापको टालनेके लिए वह स्वेच्छासे देह त्याग कर सकता है। वैसा करनेका उसे अधिकार है। परन्तु यदि पाप हो चुकनेके बाद उससे उपरति हो गई है, तो प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होना ही अच्छा है। पापके विषयमें उपरति हो

जानेपर झुँझलाकर देह-त्याग करना अनुचित है।'—इस प्रकारका महात्मा गाँधीजीका अभिमत है।

वृद्धावस्था हुई है, हाथोंसे किसी प्रकारकी शारीरिक या मानसिक सेवा नहीं हो सकती, आत्मोद्धारके लिए आवश्यक साधनाका पालन करनेका सामर्थ्य भी नहीं रहा है, अब हम पृथ्वी या समाजके लिए केवल भाररूप बन गये हैं—ऐसा जिन्हें लगता हो उनके लिए सड़ते रहनेकी अपेक्षा प्रायोपवेशन करके मरणका वरण करना एक शुद्ध सामाजिक धर्म है। पाण्डव विदुर आदि पौराणिक व्यक्तियोंने इस धर्मका पालन किया है। स्वामी विवेकानन्द एक उदाहरण लिख गए हैं कि बंगालमें पानहारी बाबाने इसी प्रकार देह-त्याग किया था। कोई असाध्य और संक्रामक बीमारी हो जाय और उसमेंसे बचनेकी कोई आशा न रही हो, तो मनुष्यके लिए प्रायोपवेशन करके देह-त्याग करना उचित है। जिस प्रकार हर एकको इस बातकी चिन्ता रखनी होती है कि उसका जीवन समाजके लिए बाधक न बन जाय, उसी तरह इस बातकी चिन्ता रखना भी समाज-धर्मके अनुकूल ही है कि उसका मरण भी समाजके लिए बाधक न बने।

सभी जगह यह माना जाता है कि आत्मघात करना एक सामाजिक अपराध है। सभी धर्मशास्त्र कहते हैं कि आत्मघात करनेवालेको मोक्ष नहीं मिलता, उसकी अधोगति होती है। अतः यह एक सवाल ही है कि कानून और धर्मशास्त्रकी इस दृष्टिके साथ उल्लिखित प्रायोपवेशन धर्मका मेल कैसे बिठाया जाय।

मनुष्यको कभी न कभी अपने आप मृत्यु तो आने ही वाली है; परन्तु उसे अपनी इच्छासे, चाहे जिस वक्त अपने ऊपर ले लेनेका अधिकार मनुष्यको है या नहीं, यही प्रश्न इस चर्चाके मूलमें है।

जो समाज मनुष्यसे कहता है कि 'तुम्हें आत्मघात करनेका अधिकार नहीं है' वह स्वयं अनेक अपराधियोंको मृत्युदण्ड देता है। इस परसे यह अनुमान निकाला जा सकता है कि जिसे जीनेमें कोई सार मालूम न होता हो, वह केवल अपनी इच्छासे मृत्युको स्वीकार न करे; बल्कि इस

विषयमें समाजसे सलाह-मशविरा और आशीर्वाद प्राप्त करके ही मृत्युको स्वीकार किया जाय।

परन्तु व्यक्ति स्वातंत्र्यका विचार करते समय इसका भी विचार करना होगा कि क्या मृत्युके विषयमें मनुष्य-समाज परतंत्र है? घोड़ा, कुत्ता, गाय आदि पालतू पशुओंको उनकी अन्तिम सेवाके तौरपर मृत्यु देनेका धर्म आजकल स्वीकृत किया गया है। और कुष्ठ जैसे रोगसे पीड़ित मनुष्यकी सब तरहसे सेवा करनेके बाद बिलकुल अन्तिम सेवाके तौर पर उसे मरण देनेकी जिम्मेदारी समूचा समाज अपने ऊपर उठा ले या नहीं, इस विषयकी चर्चा बड़े बड़े जिम्मेदार लोग कर रहे हैं वहाँ कोई यह नहीं कह सकेगा कि आमरण अनशनका अधिकार विशेष परिस्थितिमें भी मनुष्यको नहीं है। इसकी चर्चा होना आवश्यक है कि कौन सी परिस्थितिमें मनुष्यको यह अधिकार प्राप्त होता है।

इस निबन्धमें धर्मानन्दजी कोसम्बीने जो विचार पेश किया है उसपर स्वयं अमल करनेका प्रयत्न करके उन्होंने इस चर्चाको जीवित कर दिया है। समाजको किसी समय इस प्रश्नकी सांगोपांग चर्चा करनी ही चाहिए। जिस प्रकार चातुर्याम सामाजिक जीवन-धर्म है, उसी प्रकार सल्लेखना सामाजिक मरण-धर्म है। दोनों मिलकर व्यापक समाजधर्म बनता है।

धर्मानन्द कोसम्बीका यह सिद्धान्तपूर्ण निबन्ध पढ़नेके बाद कई लोगोंके मनमें यह शंका जरूर उठ सकती है कि धर्मके कलेवरमेंसे यदि ईश्वर, आत्मा, परलोक, ईश्वरप्रेरित ग्रंथ मरणोत्तर जीवन और पुरोहित वर्ग आदि सभी बातें निकाल दी जायँ, तो धर्ममें धर्मत्व क्या रह जायगा? क्या चातुर्याम, संयम और शरीर-श्रमसे ही धर्म बन सकता है? पिछली पीढ़ीके प्रारम्भमें धर्म-अधर्मके वैमनस्यसे ऊबे हुए कितने ही लोग कहते थे कि उचित नीति शिक्षा और नागरिकोंके कर्तव्यों-की ही शिक्षा दी जाय और सभी धर्मोंको शिक्षा और जीवनमेंसे निकाल दिया जाय। उनकी और धर्मानन्दजी कोसम्बीकी भूमिकामें विशेष फ़र्क़ क्या है? इसके उत्तरमें कहा जा सकता है कि यदि भूमिका शुद्ध हो, तो फिर यह आग्रह क्यों रखा जाय कि फ़र्क़ होना ही चाहिए? सामान्य नीति शिक्षाके विषयमें उस समयके धार्मिक

लोग कहते थे कि कोरी नीति शिक्षामें मनुष्यके हृदयको पूर्णतया काबूमें कर लेनेका सामर्थ्य नहीं है। सामान्य नीति शिक्षा मनुष्यको यह बता सकती है कि संसारमें कैसे रहना चाहिए, पर वह यह नहीं बतला सकती कि वैसा क्यों रहना चाहिए। यह शक्ति तो धर्ममें ही है। ईश्वरदत्त या ईश्वरप्रेरित धर्मग्रन्थ अथवा ईश्वरके किसी प्रेषित-पैगंबर-पर श्रद्धा रखे बिना, और परमात्मा या कमसे कम अन्तरात्माके जैसे स्थायी तत्त्वको आधारके तौरपर स्वीकार किये बिना मनुष्यके हाथों आत्म-समर्पण या आत्म-बलिदान जैसा दिव्यकर्म हो ही नहीं सकता। जीवनका अन्तिम आधार किसी गूढ़, अतीन्द्रिय, अनश्वर तत्त्वपर न हो, तो मनुष्यको श्रद्धारूपी पाथेय मिल ही नहीं सकता और श्रद्धाके बिना उच्च जीवन सम्भव ही नहीं हो सकता।

इसके विपक्षमें यह कहा जा सकता है कि चातुर्याम धर्ममें जिस प्रकार आत्माका स्वीकार नहीं है, उसी प्रकार उसका निषेध भी नहीं है। चातुर्याम धर्म व्यक्ति एवं समाजके लिए संपूर्ण धर्म है। जो कोई आत्मा-परमात्माका आधार चाहे, वह उसे अवश्य ले ले। चातुर्याम धर्मको ऐसे आधारकी आवश्यकता नहीं है। धर्मानन्दजी कहते हैं कि चातुर्याम ही हमारे दैवत हैं। वेदान्त कहता है कि विश्वात्मैक्यको स्वीकार किये बिना कोई भी समाज-धर्म सिद्ध नहीं हो सकता। अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अहिंसा विश्वात्मैक्यपर ही आधारित हैं और विश्वात्मैक्य ही परम सत्य है। इस सत्यसे भिन्न अन्य ईश्वर नहीं है।

परन्तु इस चर्चामें उतरनेके लिए बौद्ध धर्मानन्द तैयार नहीं थे। हम भी थोड़ी देरके लिए इस चर्चाको छोड़कर उनके इस पारमार्थिक निबन्धका श्रद्धा-प्रज्ञा-पूर्वक परिशीलन करें।

—काका कालेलकर

प्रस्तावना

भगवान् बुद्धके समयमें जैनोंको निर्ग्रंथ (निगण्ठ) कहते थे। त्रिपिटक साहित्यमें इन निर्ग्रंथोंका उल्लेख अनेक स्थानोंपर हुआ है। उनमेंसे दो स्थानो पर ' चातुर्यामसंवरसंवुतो विहरति ' ऐसा उल्लेख है। बुद्धघोषाचार्य द्वारा इसका गलत अर्थ लगा लिया जानेसे मेरी समझमें यह वाक्य बिलकुल नहीं आया था। नवम्बर सन् १९२२ में मैंने गुजरात विद्यापीठकी सेवा स्वीकार की। वहाँ काम करते समय पण्डित सुखलालजी और पण्डित बेचरदासजी दो सज्जन जैन विद्वानोंसे मेरा अच्छा परिचय हुआ। उन्होंने मुझे उल्लिखित वाक्यका ही नहीं, बल्कि त्रिपिटकमें जैनोंके सम्बन्धमें जो जो बातें हैं उन सबका अर्थ अच्छी तरह समझा दिया। उनसे परिचय न होता तो जैन धर्मके सिद्धान्तोंके विषयमें मैं आज भी अज्ञानमें ही रहा होता। अतः उनसे जैन धर्मका जो ज्ञान मुझे मिला उसके लिए मैं उनका बहुत आभारी हूँ।

विशेषतः चातुर्यामका अर्थ मेरी समझमें अच्छी तरह आ गया और तबसे मैं इन यामोंके विषयमें सोचने लगा। तब मैंने देखा कि आज जो कुछ श्रमण संस्कृति शेष बची है उसके आदिगुरु पार्श्वनाथ हैं और बुद्धके समान वे भी श्रद्धेय हैं। इस चातुर्यामपर मैंने कुछ स्थानोंपर भाषण देकर पार्श्वनाथके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की। परन्तु साथ ही मेरे मनमें यह विचार आने लगा कि ऐसे उज्ज्वल धर्मकी वर्तमान बुरी दशा क्यों प्राप्त हो गई? स्वर्गीय डाक्टर भाडारकरने मुझसे कई बार पूछा कि इतना उन्नत बौद्ध धर्म हिन्दुस्तानमेंसे पूर्णतया नष्ट कैसे हो गया? जनसाधारणमें उसका नाम तक क्यों न रहा? इस प्रश्नको हल करनेका

यथासमय प्रयत्न मैंने अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति और अहिंसा' में किया है। अब जैन धर्मकी यह हालत क्यों हुई, इसकी चर्चा इस लेखमें की है।

बौद्ध और जैन धर्मोंकी वर्तमान दुर्दशाका प्रधान कारण है सम्प्रदायोंका परिग्रह। जैसा कि धम्मपदमें कहा गया है,

> असारे सारमतिनो सारे चासारदस्सिनो।
> ते सारं नाधिगच्छन्ति मिच्छासकप्पगोचरा॥

[अर्थात् असार बातोंमें सार माननेवाले और सारयुक्त बातोंमें असार देखनेवाले तथा मिथ्या संकल्पोंमें विचरनेवाले लोग सार प्राप्त नहीं कर सकते।]

ये साम्प्रदायिक लोग निरर्थक बातोंको महत्त्व देकर धर्म रहस्यसे दूर चले गये। इसका एक दिलचस्प अनुभव मुझे भी हुआ।

बुद्ध-कालमें मांसाहारकी प्रथा कैसी थी, यह दिखानेके लिए 'पुरातत्त्व' नामक त्रैमासिक पत्रिकामें मैंने एक लेख लिखा। उस लेखमें मैंने प्रमाणोंके साथ यह बतलाया कि उस समयके सभी प्रकारके श्रमणोंमें मांसाहार प्रचलित था और उसी लेखमें कुछ हेरफेर करके 'भगवान् बुद्ध' पुस्तकका ११ वाँ अध्याय लिखा। मराठी 'भगवान् बुद्ध' का उत्तरार्ध, जिसमें यह अध्याय आया है, नागपुरके सुविचार प्रकाशन मंडलकी ओरसे सन १९४१ ईसवीमें प्रकाशित हुआ। कुछ दिगम्बर जैनोंने यह अध्याय पढ़ा और उन्होंने यवतमाल (विदर्भ) में एक संस्थाकी स्थापना करके उसके द्वारा मुझपर निन्दा निषेधकी बौछार शुरू कर दी, और अदालतमें नालिश करनेकी भी धमकी दी। अन्तमें मैंने नागपुरके 'भवितव्य' (साप्ताहिक) में एक पत्र प्रकाशित करके अपने आलोचकोंको स्पष्ट उत्तर दे दिया। तबसे विदर्भमें चलनेवाला यह आन्दोलन ठंढा पड़ गया।

पर हमारे सनातनी जैन भाई चुप नहीं बैठे। सन् १९४४ में कलकत्तेसे लेकर काठियावाड़ (सौराष्ट्र) तक अनेक सभाएँ करके उन्होंने मेरे निषेधके प्रस्ताव पास किये। इसमें सन्तोषकी बात यह थी कि

आपसमें सदा झगड़ते रहनेवाले मूर्तिपूजक श्वेताम्बर, स्थानकवासी श्वेताम्बर और दिगम्बर मेरे विरोधके लिए एक हो गये। मेरे साथ वाद-विवाद करनेके लिए भी अनेक जैन साधु और गृहस्थ तैयार हुए। उन सबको अलग-अलग उत्तर देना असम्भव था। अतः मैंने उनसे गुजराती दैनिक 'जन्मभूमि' के द्वारा प्रार्थना की कि वे हाईकोर्टके किसी गुजराती जजको सरपंच चुनें और उनके सामने सारे आक्षेप रखें, तब मैं अपने पक्षका समर्थन करूँगा। उसे सुनकर सरपंच अपना निर्णय दे दे। यह निर्णय यदि मेरे विरुद्ध हो तो मैं जैनोंसे जाहिरा तौरपर माफी माँगूँ, और यदि उन जैनियोंके प्रतिकूल हो तो वह निर्णय समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित कर दिया जाय, जिससे कि भविष्यमें यह वाद ही नहीं रहे। पर जैनोंको यह बात पसन्द नहीं आई और आखिर वह आन्दोलन अपने आप खतम हो गया। फिर भी बीच-बीचमें कोई न कोई सनातनी जैन अटसट पत्र लिखनेकी तकलीफ लेता ही रहता है।

परन्तु मेरे ये जैन भाई एक क्षणके लिए भी यह विचार नहीं करते कि जैनधर्मका रहस्य मांसाहार न करनेमें है या चातुर्याम धर्ममें। यदि चातुर्याम धर्ममें है तो क्या उसके अनुसार इस समयके जैन साधु और गृहस्थ आचरण करते हैं? उदयपुरके केसरियानाथ नामक जैन मन्दिरमें श्वेताम्बरों और दिगम्बरोंने एक दूसरेपर गोलियाँ चलाकर हत्याएँ कीं। समेदशिखरके पार्श्वनाथ मन्दिरकी पूजाको लेकर हमेशा मुकदमा चलते रहते हैं, और वे अक्सर प्रीवी कौन्सिल तक जाते हैं। अबतक इन मुकदमोंमें लाखों रुपये खर्च हुए हैं और कोई कह नहीं सकता कि आगे कितने खर्च होंगे। गिरिनार आदि स्थानोंमें भी ये झगड़े चल रहे हैं। मगर कोई सनातनी जैनी यह नहीं सोचता कि ये चातुर्यामसे कितने असंगत हैं। उन्होंने मुझपर इतनी तोहमतें लगाईं, तो भी उनके प्रति मेरा प्रेम कायम ही है। यह दोष उनका नहीं बल्कि सांप्रदायिकताका है और साम्प्रदायिकतासे बौद्ध एवं ईसाई भी अलिप्त नहीं हैं। ईसाइयोंने तो आपसमें लड़कर खूनकी नदियाँ बहाई हैं। अतः जैनियोंको ही दोष क्यों दिया जाय? परन्तु ऐसी सांप्रदायिकतासे मुक्त होनेकी चेष्टा करना हमारा कर्तव्य है।

मेरा यह प्रयत्न इसीलिए है कि साम्प्रदायिकताके चंगुलसे निकलकर हम चातुर्याम धर्मका महत्त्व समझ जायँ और उस धर्मके आचरणसे मानव-समाजका कल्याण करनेमें समर्थ हों। इसमें जो दोष हों उन्हें अवश्य सुधारें और गुण ग्रहण करके आत्म-पर-हिततत्पर हों, यही मेरी सबसे प्रार्थना है।

बनारस
२९, जून १९४६.

धर्मानन्द

पार्श्वनाथका

चातुर्याम धर्म

त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष

जैनोंके दो प्रधान सम्प्रदाय हैं : श्वेताम्बर और दिगम्बर। ये दोनों सम्प्रदाय त्रिषष्टी (६३) शलाकापुरुषोंको मानते हैं। प्राचीन कालमें विशेष निमंत्रित व्यक्तियोंको शलाकाएँ (सलाईयाँ) भेजी जाती थीं। उन शलाकाओंको दिखानेपर निमंत्रित स्थानमें प्रवेश मिलता था।[१] इस पद्धतिपरसे चुने हुए पुरुषोंको शलाका-पुरुष कहनेकी प्रथा पड़ी होगी। जैनग्रंथोंमें ऐसे चुने हुए या प्रसिद्ध पुरुष ६३ बताये गये हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं :—

ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शांति, कुन्थु, अर, मल्लि, सुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व और वर्धमान, ये २४ तीर्थंकर;

भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शांति, कुन्थु, अर, सुभाम, पद्म, हरिषेण, जयसेन और ब्रह्मदत्त, ये १२ चक्रवर्ती;

[१] देखिए, विसुद्धिमग्गदीपिका २।२७

विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नन्दि, नन्दिमित्र, राम, और पद्म, ये ९ बलदेव,

त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयम्भू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषपुण्डरीक, पुरुषदत्त, नारायण (लक्ष्मण), और कृष्ण, ये ९ **नारायण**, और

अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधुकैटभ, निशुम्भ, बलि, प्रहरण, रावण और जरासन्ध ये ९ (उनके) **प्रतिशत्रु**।

इस प्रकार कुल मिलाकर ६३ पुरुष होते हैं। इनमेंसे शान्ति, कुन्थु, और अर चक्रवर्ती होकर तीर्थकर बने। उनकी गिनती तीर्थकरोंमें हुई है और फिर चक्रवर्तियोंमें भी हुई है।

तीर्थकरोंकी ऊँचाई और आयुष्य

	ऊँचाई	आयुष्यके वर्ष
ऋषभ	५०० धनुष्य*	८४ लाख पूर्व×
अजित	४५० ,,	७२ ,, ,,
सम्भव	४०० ,,	६० ,, ,,
अभिनन्दन	३५० ,,	५० ,, ,,
सुमति	३०० ,,	४० ,, ,,
पद्मप्रभ	२५० ,,	३० ,, ,,
सुपार्श्व	२०० ,,	२० ,, ,,
चन्द्रप्रभ	१५० ,,	१० ,, ,,
पुष्पदन्त	१०० ,,	२ ,, ,,
शीतल	९० ,,	१ ,, ,,

* देखिए, तिलोयपण्णत्ति ४।५७९-५८२। एक धनुष्य अर्थात् ४ हाथ या ६ फीट। ति० प० ४।५८५-५८७

× ८४ लाखका एक पूर्वांग और ८४ लाख पूर्वांगोंका एक पूर्व, अर्थात् ७० लाख ५६ हजार करोड़ वर्ष (सर्वार्थसिद्धि अ० ३।३१)

श्रेयांस	८० धनुष्य	८४ लाख पूर्व
वासुपूज्य	७० ,,	७२ ,,
विमल	६० ,,	६० ,,
अनन्त	५० ,,	३० ,,
धर्म	४५ ,,	१० ,,
शान्ति	४० ,,	१ ,,
कुन्थु	३५ ,,	९५ हजार
अर	३० ,,	८४ ,,
मल्लि	२५ ,,	५५ ,,
सुव्रत	२० ,,	३० ,,
नमि	१५ ,,	१० ,,
नेमि	१० ,,	१ ,,
पार्श्व	९ हाथ	१०० वर्ष
वर्धमान	७ ,,	७२ ,,

बुद्धोंके साथ तुलना

इन तीर्थंकरोंकी तुलना बुद्धवंशमें वर्णित २५ बुद्धोंके साथ करना उचित होगा।

	ऊँचाई	आयुष्यके वर्ष	स्त्रियाँ
दीपंकर	८० हाथ	१ लाख	३ लाख
कोण्डञ्ञ	८८ ,,	१ ,,	३ ,,
मंगल	८८ ,,	९० हजार	३० हजार
सुमन	९० ,,	९० ,,	६३ ,,
रेवत	८० ,,	६० ,,	३३ ,,

सोभित	५८ हाथ	९० हजार	४३ हजार (?)
अनोमदस्सी	५८ ,,	१ लाख	२३ ,,
पदुम	५८ ,,	१ ,,	३३ ,,
नारद	८८ ,,	९० हजार	४३ ,,
पदुमुत्तर	५८ ,,	१ लाख	४३ ,,
सुमेध	८८ ,,	९० हजार	४८ ,,
सुजात	५० ,,	९० ,,	२३ ,,
पियदस्सी	८० ,,	९० ,,	३३ ,,
अत्थदस्सी	८० ,,	१ लाख	३० ,,
धम्मदस्सी	८० ,,	१ ,,	४० ,,
सिद्धत्थ	६० ,,	१ ,,	४८ ,,
तिस्स	६० ,,	१ ,,	३० ,,
फुस्स	५८ ,,	९० हजार	२३ ,,
विपस्सी	८० ,,	८० ,,	४३ ,, (?)
सिखी	७० ,,	७० ,,	२४ ,,
वेस्सभू	६० ,,	६० ,,	३० ,,
ककुसंध	४० ,,	४० ,,	३० ,,
कोनागमन	३० ,,	३० ,,	१६ ,,
कस्सप	२० ,,	२० ,,	४८ ,, (?)
गोतम	— ,,	— ,,	४० ,,

तीर्थंकरोंकी कथाएँ जिन ग्रंथोंमें मिलती हैं उनसे बुद्धवंश अधिक प्राचीन है। अतः पहले बौद्ध भिक्षुओंने ऐसी असंभाव्य दन्तकथाएँ लिखना शुरू कीं और उन्हें लोकप्रिय होते देख जैन साधुओंने उनसे भी आगे बढनेकी चेष्टा की होगी। इस प्रकारके असत्यकी होड़से बौद्धों

और जैनोंका ही नहीं, बल्कि सारे हिन्दुस्तानका कितना नुकसान हुआ, इसकी चर्चा इस पुस्तकमें उचित स्थानपर की जायगी।

इन दन्तकथाओंमें एक विशेष बात यह है कि श्वेताम्बर जैन मल्लि तीर्थंकरको स्त्री मानते हैं; परंतु दिगंबरोंको यह बात स्वीकार नहीं है। उनके मतसे किसी स्त्रीका केवली होना असंभव है; क्योंकि स्त्री नग्न नहीं रह सकती!

उल्लिखित ६३ शलाका पुरुषोंकी कथाएँ हेमचन्द्राचार्यने 'त्रिषष्टि-शलाका-पुरुषचरित' नामक ग्रंथमें दी हैं। उनमेंसे केवल पार्श्वनाथकी कथाका सारांश हम यहाँ देते हैं।

पार्श्वनाथकी कथा

वाराणसीके अश्वसेन राजाकी पत्नी वामादेवीके चैत्र कृष्ण चतुर्दशीके दिन विशाखा नक्षत्रमें गर्भ रहा, और उसने पौष कृष्ण दशमीके दिन अनुराधा नक्षत्रमें एक पुत्रको जन्म दिया। इन्द्र आदि देवोंने उसका स्तोत्र गाया और अश्वसेन राजाने कैदियोंको बन्धमुक्त करके बड़े ठाठसे पुत्रजन्मोत्सव मनाया। वामादेवीने उस पुत्रके उदरमें (कोखमें) रहते समय अंधेरी रातके बावजूद अपनी बाजूमें (पार्श्वतः) रेंगनेवाला एक साँप देखा था। राजाको उसका स्मरण हो आया और उसने लड़केका नाम पार्श्व रखा। पार्श्व जब बालिग हुआ तब उसकी ऊँचाई नौ हाथ थी।

उस समय अश्वसेन राजाके पास एक अपरिचित दूत आया। राजाने उससे आगमनका कारण पूछा तो उसने कहा, "महाराज, मैं कुशस्थली नगरीके राजा प्रसेनजित्के यहाँसे आया हूँ। उस राजाके प्रभावती नामकी एक अत्यंत रूपवती कन्या है। जब वह अपनी सखियोंके साथ

उद्यानमें क्रीडा कर रही थी, उसने पार्श्वनाथकी स्तुतिसे भरा हुआ गीत किन्नरियोंके मुँहसे सुना; तबसे वह पार्श्वनाथपर अनुरक्त हो गई है। उसके माँ-बापको जब यह बात मालूम हुई तो उन्हें बहुत हर्ष हुआ; और उन्होंने उसे यहाँ पार्श्वनाथके पास भेजनेका निश्चय किया।

"यह समाचार यवन (नामक) कलिंग राजाने सुना तो वह अपने दरबारमें बोला, 'जब मैं यहाँ मौजूद हूँ, तो प्रभावतीके साथ व्याह करनेवाला यह पार्श्व कौन होता है? और यह कुशस्थलीका राजा उसे मुझे क्यों नहीं देता? परंतु दानकी प्रतीक्षा तो याचक करते हैं और शूर लोग जबर्दस्तीसे छीन लेते हैं क्यों कि सारी चीजें शूरोंकी ही हैं।' ऐसा कहकर उसने बड़ी सेनाके साथ आकर कुशस्थलीको घेर लिया है। कोई भी व्यक्ति अन्दर या बाहर नहीं जा सकता। मैं किसी तरह रातको भाग निकला हूँ।"

दूतकी यह बात सुनकर अश्वसेनको बड़ा क्रोध आया और वह बोला, "यह तुच्छ यवन मेरे सामने क्या कर सकता है? और मेरे रहते आपको डर काहेका है? आपके नगरकी रक्षाके लिए मैं अभी सेना भेजता हूँ!" इतना कहकर उसने रणभेरी बजानेका हुक्म दिया।

पार्श्व उस समय क्रीडागृहमें था। उसने वह भेरीशब्द और एकत्रित हुए सैनिकोंका जोरदार घोष सुना तो पिताके पास जाकर पूछा कि, 'यह सारी तैयारी किसलिए हो रही है?' पिताने उस दूतकी ओर इशारा करके उससे प्राप्त समाचार पार्श्वको सुनाया। तब पार्श्व बोला, "तात, इस मुहीममें आप स्वयं न जाकर मुझे भेजिए।" अश्वसेन बोला, "बेटा, तुम्हारी यह उम्र क्रीडा करनेकी है। अतः मुझे इसीमें आनन्द है कि तुम घरपर ही सुखसे रहो।" इसपर पार्श्वने कहा, "पिताजी, यह भी मेरी एक क्रीडा ही होगी। अत. आप घर पर ही रहें।"

इस प्रकार पार्श्वके आग्रहके कारण अश्वसेनने उसे लड़ाईके लिए भेज दिया। पार्श्वने कुशस्थली जाकर यवनको पूरी तरह हरा दिया और यवन उसकी शरण गया। तब पार्श्वनाथने यवनको ताकीद की कि वह फिर कभी ऐसा न करे और उसे अपने राज्यमें वापस जानेकी अनुमति दे दी। इसके बाद प्रेसनजित् राजाने पार्श्वका बड़ा गौरव किया और प्रभावतीकी प्रीतिकी बात उसे सुनाई। तब पार्श्व बोला, "पिताजीकी आज्ञासे मैं केवल आपकी रक्षाके लिए यहाँ आया हूँ, न कि आपकी कन्याके साथ विवाह करनेके लिए।"

यह सुनकर प्रभावती बहुत उदास हुई; परतु प्रसेनजित्ने उसे सान्त्वना दी और उसे साथ लेकर वह पार्श्वनाथके साथ वाराणसी पहुँचा। वहाँ अश्वसेनने उसका उचित स्वागत किया। प्रसेनजित्ने उसे प्रभावतीका हाल सुनाया और फिर अश्वसेनके आग्रहके कारण पार्श्वनाथने उसका पाणिग्रहण किया।

उन दिनों कठ नामका एक तापस वाराणसीसे बाहर पचाग्निसाधन आदि तप कर रहा था। सारे नागरिक उसे देखने जाते। अत पार्श्व भी वहाँ चला गया। उसे उस तापसकी धूनीमें जलनेवाले एक लकडमें एक बडा साँप दिखाई दिया। तब वह बोला, "कैसा अज्ञान है यह! यह तपस्वी है, फिर भी इसके दया नहीं है। बिना दयाके धर्म कैसा?" तब कठ बोला, "राजपुत्र तो हाथी घोडे आदि ही जानते हैं, परतु हम मुनिधर्म जानते हैं।"

इसपर पार्श्वने अपने नौकरोंसे वह जलनेवाला लक्कड बाहर निकलवाकर फटवाया तो उसमें थोड़ा-सा जला हुआ धरण नामका नाग निकला। पार्श्वने लोगोंसे कहा कि वे उस नागको नमस्कार करें। लोगोंने पार्श्वके अन्तर्ज्ञानकी तारीफ की। यह सुनकर कठने और भी कठोर तप शुरू किया और मरकर वह मेघमाली नामक असुर हुआ।

इधर पार्श्व भगवान् यह जान गये कि उनका कर्मफल भोगना समाप्त हो गया है; अतः वे प्रव्रज्या लेनेको तैयार हुए, और विशाल नामकी शिविका (पालकी) में बैठकर अरण्यमें स्थित आश्रममें गये। वहाँ उन्होंने अपने वस्त्र-अलंकारोंका त्याग किया। तब इन्द्रने उन्हें वस्त्र दे दिये। उनके साथ ३०० राजाओंने प्रव्रज्या ले ली।

एक बार पार्श्वनाथ यात्रा करते करते एक तापसाश्रममें पहुँचे आर वहाँ एक कुएँके पास वटवृक्षके नीचे ठहर गये। तब पूर्वजन्मका वैर निकालनेके लिए मेघमाली असुरने बहुत-से भयंकर शार्दूल (सिंह) उत्पन्न करके उन्हें पार्श्वनाथपर छोड दिया। परंतु पार्श्वनाथकी समाधि भंग नहीं हुई आर वे शार्दूल कहींके कहीं चले गये। इसके बाद मेघमालीने क्रमशः पहाड जैसे हाथी, अपने डंकसे पत्थरोंको तोड़नेवाले बिच्छू, निर्दय रीछ, दृष्टि विष साँप, और भयंकर वेताल उत्पन्न करके उन्हें पार्श्वपर छोड़ दिया। मगर वे सब वहींके वहीं नष्ट हो गये। तब मेघमालीने कल्पान्त मेघ जैसी वर्षा की। उससे बाद आई और पार्श्वनाथकी नाकतक पानी पहुँच गया। उस समय धरण नागराजका आसन कंपित हुआ और उसने जान लिया कि पूर्वजन्मका शठ इस जन्ममें मेघमाली बनकर पार्श्वनाथको सता रहा है। अब वह अपनी रानियों समेत पार्श्वके पास गया और उसने अपने शरीरसे पार्श्वनाथको घेरकर अपने सात फनोंसे उनपर छत्र बना लिया और उसकी रानियोंने पार्श्वनाथके सामने सुंदर नृत्य शुरू किया। पार्श्वनाथ जिस प्रकार मेघमालीकी करतूतोंसे विचलित नहीं हुए थे उसी प्रकार उस नृत्यका भी कोई प्रभाव उनपर नहीं पड़ा।

मेघमाली लगातार पानी बरसाता ही रहा। यह देखकर धरण नागराज क्रुद्ध हुआ और बोला, "अरे, तू यह क्या कर रहा है ! उस दिन लकड़ीके अंदर साँप जल रहा है, यह जानकर प्रभुने तुझे पापसे

निवृत्त करनेका प्रयत्न किया तो उससे तेरा क्या अहित हुआ ? प्रभुका सदुपदेश भी तेरे वैरका कारण बन गया ! " यह बात सुनकर मेघमाली डर गया और पार्श्वनाथकी शरण गया।

पार्श्वनाथ वहाँसे वाराणसी पहुँचे और वहाँके उद्यानमें एक धातकी वृक्षके नीचे ठहरे। वहाँ, जिस दिन उनकी दीक्षाके ८४ दिवस पूरे हुए, उस दिन अर्थात् चैत्र कृष्ण चतुर्दशीको सुबह उनके घातिया कर्मोंका नाश हुआ और उन्हें केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ।

उस अवसरपर देव-देवियाँ, नर-नारियाँ और साधु-साध्वियाँ उन्हें नमस्कार करके यथोचित स्थानपर बैठ गईं। वह वैभव उद्यानपालने देखा और उसने राजमहलमें जाकर नमस्कारपूर्वक अश्वसेनको कह सुनाया। अश्वसेन वामादेवीके साथ अपने पूरे परिवारसमेत पार्श्वनाथके पास गये और उन्हें नमस्कार एवं प्रदक्षिणा करके इन्द्रके पास बैठे। इन्द्र और अश्वसेनने पार्श्वनाथका स्तवन किया।

पार्श्वनाथका धर्मोपदेश

इसके अनन्तर पार्श्वनाथने इस प्रकार धर्मोपदेश किया:—इस जरा-व्याधि-मृत्युसे भरे हुए संसाररूपी महारण्यमें धर्मके सिवाय अन्य त्राता नहीं है। अतः उसीका सहारा लेना चाहिए। यह धर्म दो प्रकारका है—सर्वविरति और एकदेशविरति +। इनमेंसे पहला संयम आदि दस

+ इसका वर्णन हेमचन्द्राचार्यने नहीं किया है। परंतु तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सर्वविरतिके ये दस प्रकार दिये गये हैं:—क्षमा, मार्दव (मृदुता), आर्जव (सरलता), शौच (निर्लोभता), सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य। इसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और असंग्रह, इन पाँच महाव्रतोंका समावेश होता ही है। इन पाँच महाव्रतोंका पालन गृहस्थ लोग पूर्ण-रूपसे नहीं कर सकते, अतः उनके इन व्रतोंको अणुव्रत कहते हैं।

पार्श्वनाथके शासन देवता

कूर्मका वाहन और सिरपर नागफन रखनेवाला, बायीं तरफ़के दो हाथोंमें नकुल एवं साँप धारण करनेवाला, दायीं ओरके दो हाथोंमें फल और साँप धारण करनेवाला श्यामवर्ण चतुर्भुज गजानन यक्ष पार्श्वनाथका शासन देवता बना। इसी तरह मुर्गेपर और साँपपर बैठनेवाली, दायीं ओरके दो हाथोंमें पद्म एवं पाश धारण करनेवाली, बायीं ओरके दो हाथोंमें फल एवं अंकुश धारण करनेवाली, स्वर्णवर्णा पद्मावती देवी पार्श्वनाथकी दूसरी शासनदेवी बनीं।

पार्श्वनाथका निर्वाण

यहाँ तक हमने त्रिषष्टि शलाका पुरुषचरित्रके नौवें पर्वके दूसरे और तीसरे सर्गोंका सारांश बताया। चौथे सर्गमें सागरदत्त एवं बंधुदत्त नामक दो व्यापारियोंके पूर्वजन्मकी और उसी जन्मकी कथाएँ हैं। उनमें से सागरदत्तने पार्श्वनाथसे प्रश्न किया कि जिनरत्न प्रतिमाकी स्थापना कैसे की जाय और पार्श्वनाथकी बताई विधिके अनुसार उस मूर्तिकी स्थापना करके उसने प्रव्रज्या ले ली। बंधुदत्त नागपुरीका रहनेवाला था। उसने और उसकी पत्नी प्रियदर्शनाने पार्श्वनाथसे गृहस्थव्रत ले लिया और नागपुरीके नरनिधिस्वामी राजाने प्रव्रज्या ले ली।

इस प्रकार धर्मोपदेश करते हुए घूमते समय पार्श्वनाथके साधुशिष्य १६ हज़ार, साध्वियाँ ३८ हज़ार, श्रावक १ लाख ६४ हजार और श्राविकाएँ ३ लाख ७७ हज़ार हुईं।

अपने निर्वाणको निकट जानकर पार्श्वनाथ सम्मेद पर्वतपर गये और वहाँपर ३३ साधुओं समेत ३० दिन अनशनव्रत (उपवास) करनेके बाद श्रावणशुक्ल अष्टमीको विशाखा नक्षत्रमें उन्हें निर्वाण प्राप्ति हुई। वे गृहस्थाश्रममें ३० बरस, और सन्यासाश्रममें ७० बरस रहे।

दिगम्बरोंका मतभेद

त्रिषष्ठि-शलाका-पुरुषचरित श्वेताम्बर संप्रदायका ग्रन्थ है। उसमेंसे कई बातें दिगम्बरोंको स्वीकार नहीं हैं। उनमेंसे पार्श्वनाथके चरित्रसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें ये हैं:—वे पार्श्वनाथका जन्म पौषकृष्ण एकादशीको विशाखा नक्षत्रमें (ति० प० ४।१५४८) और निर्वाण श्रावण शुक्ल सप्तमीको विशाखा नक्षत्रमें (ति० प० ४।१२०७) हुआ मानते हैं। उनके मतमें पार्श्वनाथ कुमार-ब्रह्मचारी थे और वे केवली (जीवन्मुक्त) होनेके बाद कवलाहार (अन्नाहार) नहीं करते थे; क्योंकि केवलियोंको अन्नकी आवश्यकता ही नहीं रहती। अतः उन्हें यह बात पसंद नहीं कि पार्श्वनाथने निर्वाणके समय अनशन किया था। इस वाद-विवादमें जैनेतर लोगोंको कोई दिलचस्पी नहीं होगी। परंतु यह तात्पर्य तो सभी लोग ग्रहण कर सकते हैं कि सम्प्रदाय बन जानेपर मामूली बातोंमें भी कैसे मतभेद पैदा हो जाते हैं।

पार्श्वनाथकी कथामें इतिहासका अभाव

ऊपर ऊपरसे पढनेवाला व्यक्ति भी यह असानीसे समझ सकता है कि पार्श्वनाथकी उल्लिखित सारी कथा काल्पनिक है। यह बात असम्भव है कि पार्श्वनाथके समयमें कलिंग देशमें यवन नामका राजा राज करता हो। अन्य बातें भी ऐसी ही हैं। यह संभव है कि उनका जन्म वाराणसीमें हुआ हो, परंतु इसके लिए कोई आधार नहीं कि उनका पिता वहाँका राजा था। वज्जियों या मल्लोंके राज्योंकी तरह काशीका राज्य भी गणसत्तात्मक था। परंतु बुद्धसमकालमें उसकी स्वतंत्रताका नाश होकर उसका समावेश कोसल देशमें हो गया था। यह नहीं कहा जा सकता कि पार्श्वनाथका जन्म काशीके स्वातंत्र्य-कालमें हुआ था या

उसका समावेश कोसल देशमें होनेके बाद। उन दिनों अच्छे वस्त्रको 'काशिक वस्त्र' और अच्छे चन्दनको 'काशिक चन्दन' कहा जाता था। इस परसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि काशीके गण-राजा प्रगतिशील थे। ऐसे देशमें पार्श्वका जन्म हुआ हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं।

क्या पार्श्वनाथ ऐतिहासिक नहीं थे?

यहाँपर यह सवाल उठ सकता है कि यदि पार्श्वनाथकी कथा काल्पनिक हो तो स्वयं पार्श्व भी काल्पनिक क्यों न होंगे? इसका उत्तर यह है कि ये सारी दन्तकथाएँ होने हुए भी त्रिपिटक ग्रन्थोंमें जैनोंके सम्बन्धमें और जैनोंके आगमोंमें पार्श्वके सम्बन्धमें जो जानकारी मिलती है उसपरसे यह निष्कर्ष निकलता है कि पार्श्वनाथ ऐतिहासिक पुरुष थे।

त्रिपिटकमें निर्ग्रन्थोंका उल्लेख अनेक स्थानोंपर हुआ है। उससे ऐसा दिखाई देता है कि निर्ग्रंथ सम्प्रदाय बुद्धसे बरसों पहले मौजूद था। अंगुत्तर निकायमें यह उल्लेख पाया जाता है+ कि वप्प नामका शाक्य निर्ग्रंथोंका श्रावक था। उस सुत्तकी अट्ठकथामें यह कहा गया है कि यह वप्प बुद्धका चाचा था*। अर्थात् यह कहना पड़ता है कि गौतम बुद्धके जन्मसे पहले या उनकी छोटी उम्रमें ही निर्ग्रंथोंका धर्म शाक्य देशमें पहुँच गया था। महावीर स्वामी बुद्धके समकालीन थे। अतः यह मानना उचित होगा कि यह धर्म-प्रचार उन्होंने नहीं बल्कि उनसे पहलेके निर्ग्रंथोंने किया था।

+ एक समयं भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मिं।
अथ खो वप्पो सक्को निगण्ठ सावको इ।
—अंगुत्तर, चतुक्कनिपात, चतुत्थपण्णासक, पाँचवाँ वग्ग

* वप्पोति दसबलस्सचुल्लपिता।—अंगुत्तर अट्ठकथा, सयाम संस्करण २।४७४

जैन ग्रंथोंमें अनेक स्थानोंपर यह उल्लेख पाया जाता है कि इन प्राचीनतर निर्ग्रंथोंके नेता पार्श्वनाथ थे। उनमेंसे एक महत्त्वपूर्ण उद्धरण यहाँ दिया जाता है।

पार्श्व तीर्थंकरका ख्यातनाम शिष्य केशी अपनी बड़ी शिष्यशाखाके साथ श्रावस्ती गया और तिन्दुक नामके उद्यानमें ठहरा। वर्धमान तीर्थंकरका प्रसिद्ध शिष्य गोतम भी बहुत-से शिष्योंके साथ श्रावस्ती पहुँचा और कोष्टक नामके उद्यानमें ठहर गया। उन दोनोंके शिष्यसंघोंमें इन दो सम्प्रदायोंके मतान्तरके सम्बन्धमें चर्चा होने लगी। तब यह जानकर कि ज्येष्ठ कुल केशीका है, गोतम अपना शिष्यशाखाके साथ तिंदुक उद्यानमें पहुँचे और उन्होंने केशीसे भेंट की। उस समय केशीने यह प्रश्न पूछा कि,

> चाउज्जामो य जो धम्मो जो इमो पंचसिक्खिए।
> देसिओ वद्धमाणेण पासेण य महामुणी॥
> एक कज्जपवन्नान विसेसे किं नु कारणं।
> धम्मे दुविहे मेहावी कथं विप्पच्चयो न ते॥

[हे महामुनि, चातुर्याम धर्मका उपदेश पार्श्वने किया और पंचव्रतोंके उसी धर्मका उपदेश वर्धमानने किया। एक ही कार्यके लिए उद्यत हुए इन दोनोंमें यह फर्क क्यों है ? हे मेधावी, इस द्विविध धर्मके विषयमें तुम्हें कैसे शंका नहीं आती ?]

इसपर गोतम बोले,

> पुरिमा उज्जुजड्डाउ वक्कजड्डाय पच्छिमा।
> मज्झिमा उज्जुपन्नाउ तेण धम्मे दुहा कए॥

[प्रथम तीर्थंकरके अनुयायी ऋजु-जड होते हैं और अन्तिम तीर्थंकरके अनुयायी वक्र-जड, परंतु मध्यम बाईस तीर्थंकरोंके अनुयायी ऋजु प्रज्ञ होते हैं, इसलिए दो प्रकारका धर्म होता है।]

इसका अर्थ यह है कि ऋषभदेवके अनुयायी सीधे किन्तु जड़ होनेसे और वर्धमानके अनुयायी वक्र एवं जड़ होनेसे वे दोनों तीर्थंकर पंचमहाव्रतोंके धर्मका उपदेश देते हैं; आर वीचके वाईस तीर्थंकरोंके अनुयायी सीधे (सरल) और प्रज्ञावान् होनेसे वे तीर्थंकर केवल चातुर्याम धर्मका उपदेश देते हैं।

केशीने दूसरा प्रश्न यह पूछा कि,

> अचेलओ अ जो धम्मो जो इमे संतरुत्तरो।
> देसिओ वड्ढमाणेण पासेण य महामुणी॥
> एक-कज्ज-पवन्नाणं विसेसे किं नु कारणं।
> लिंगे दुविहे मेहावी कहं विप्पच्चयो न ते॥

[अर्थात् हे महामुनि, वर्धमानने अचेलक (दिगंबर) धर्म और पार्श्वने तीन, दो या एक वस्त्र रखनेका धर्म प्रचारित किया। एक कार्यमें उद्यत हुए इन दोनोंमें यह फर्क क्यों ? हे मेधावी, इस द्विविध लिंगके विषयमें तुम्हें शंका कैसे नहीं आती ?]

इसपर गोतम बोले:—

> विन्नाणेण समागम्म धम्मसाहणमिच्छियं।
> पच्चयत्थं च लोगस्स नाणाविह विकप्पणं।
> जत्तत्थं गहणत्थं च लोगे लिंगपओअण॥

[अर्थात् केवल ज्ञानसे सम्पन्न होकर (इन दो तीर्थंकरोंने) लोगोंके विश्वासके लिए, शरीरयात्राके लिए और ज्ञानलाभके लिए विभिन्न लिंग-प्रयोजनोंका उपदेश किया। (उत्तराध्ययन, २३ वाँ अध्ययन)]

चातुर्यामका पंचमहाव्रतमें और सचेलक व्रतका अचेलकव्रतमें परिवर्तन करनेके लिए यहाँ दिये हुए कारण जोरदार दिखाई नहीं देते और उनसे ऐसा लगता है कि यह सम्वाद भी काल्पनिक ही होगा। परंतु समञ्ञफलसुत्तमें निर्ग्रंथोंका वर्णन 'चातुर्याम संवरसंवुतो' कहकर

किया गया है, जिससे यह साबित होता है कि बुद्धके समय तक निर्ग्रन्थ लोग चातुर्याम-धर्मको ही मानते थे। तत्पश्चात् महावीर स्वामीने उन यामोंमें ब्रह्मचर्य व्रतको जोड़ दिया। इसी तरह त्रिपिटकमें इसके लिए भी प्रमाण मिलता है कि निर्ग्रंथ लोग कमसे कम एक वस्त्रका प्रयोग करते थे।* परंतु इसके लिए कोई आधार नहीं मिलता कि वे अचेलक (नग्न) रहते थे। यद्यपि यह जानकारी अधूरी है, फिर भी उसपरसे यह मानना उचित ज्ञात होता है कि पार्श्वनाथ विद्यमान थे और उन्होंने चातुर्याम धर्मका उपदेश दिया था।

चातुर्याम धर्मका उद्गम और प्रचार

यह चातुर्याम धर्म इस प्रकार है :—सब्बातो पाणातिपातिवाओ वेरमण, एवं मुसावायाओ वेरमण, सब्बातो अदिन्नादाणाओ वेरमण, सब्बातो बहिद्धादाणाओ वेरमणं (स्थानांगसूत्र २६६)—
अर्थात् सभी प्रकारके प्राण-घातसे विरति, उसी प्रकार असत्यसे विरति, सब प्रकारके अदत्तादान (चोरी) से विरति और सब प्रकारके बहिर्धा आदान (परिग्रह) से विरति। इन चार विरतियोंको याम कहते हैं। यहाँ यम धातु दमनके अर्थमें है। इन चार प्रकारोंसे आत्मदमन करना ही चातुर्याम धर्म है। उसका उद्गम वेदों या उपनिषदोंसे नहीं बल्कि वेदोंसे पहले इस देशमें प्रचलित तपस्वी ऋषि-मुनियोंके तपोधर्मसे हुआ है।

ये ऋषिमुनि संसारके दुःखों और मनुष्य मनुष्यके बीच होनेवाले असद्व्यवहारसे ऊबकर अरण्यमें चले जाते थे और चार प्रकारकी तपश्चर्या करते थे। उनमेंसे एक तप अहिंसा या दयाका होता था। पानीकी

* तयिदं भन्ते पूरणेन कस्सपेन लोहिताभिजाति पञ्ञत्ता निगण्ठा एकसाटका।
—अंगुत्तर छक्कनिपात, दुतियपण्णासक, पठमवग्ग, सुत्त ३।

बूँदको भी कष्ट न देनेकी यह तपश्चर्या होती थी*। उनपर असत्य बोलनेकी नौबत ही न आती थी। वे अरण्यके फल-मूलोंपर निर्वाह करके रहते थे, अत यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वे चोरीसे अलिप्त रहते थे। वे या तो नग्न रहते थे या फिर बहुत हुआ तो वल्कल पहनते थे, अत यह स्पष्ट है कि वे पूर्णरूपेण अपरिग्रहव्रतका पालन करते थे। परतु इन यामोंका प्रचार वे नहीं करते थे। अत ब्राह्मणोंके साथ उनका झगड़ा कभी नहीं हुआ।

परतु पार्श्वनाथने इन यामोंको सार्वजनिक बनानेकी चेष्टा की। उन्होंने और उनके शिष्योंने लोगोंसे मिलनेवाली भिक्षापर निर्वाह करके जनसाधारणको भी इन यामोंकी शिक्षा देना शुरू किया और उसके परिणामस्वरूप लोगोंमें ब्राह्मणोंके यज्ञ-याग अप्रिय होने लगे। महावीर स्वामी, बुद्ध एव अन्य श्रमणोंने भी इस दयाधर्मका प्रचार किया और इसी लिए श्रमणों और खासकर जैनों एव बौद्धोंपर ब्राह्मणोंकी वक्रदृष्टि हुई।

वास्तवमें केवल ब्राह्मणोंका विरोध करनेके लिए पार्श्वने इस चातुर्यामधर्मकी स्थापना नहीं की थी। मानव-मानवोंके बीचकी शत्रुता नष्ट होकर समाजमें सुखशाति रहे, यही इस धर्मका उद्देश्य था। परतु पार्श्वनाथने अहिसा तो ऋषि-मुनियोंसे ली थी, अत उसका क्षेत्र मनुष्य जातितक सीमित करना उनके लिए सभव नहीं था। उन्होंने लोगोंसे कहा कि जानबूझकर प्राणियोंकी हत्या करना अनुचित है, और उस समयकी परिस्थितिमें साधारण जनताको यह अहिंसा पसद आई। क्योंकि राजा लोग और सम्पन्न ब्राह्मण जबर्दस्तीसे उनकी खेतीके जानवर छीन लेते थे और यज्ञ-यागमें उन्हें बेशुमार कत्ल करते थे‡।

* देखिए भारतीय संस्कृति और अहिंसा, (वि २।८-६ ५०३९) भगवान् बुद्ध पृष्ठ ६१

‡ देखिए, 'भगवान बुद्ध' दूसरा अध्याय।

पार्श्वके धर्ममें महावीर स्वामीद्वारा किये परिवर्तन

ऊपर दिये गये उत्तराध्ययन सूत्रके अवतरणसे यह स्पष्ट दिखाई देता है कि पार्श्वनाथके चातुर्याम धर्ममें महावीर स्वामीने दो प्रधान परिवर्तन किये। अर्थात् चातुर्यामके स्थानपर पचमहाव्रतोंको और सचेलकत्वके बजाय अचेलकत्वको स्थान दिया। वहाँपर कहा गया है कि इनमेंसे पहला परिवर्तन तत्कालीन कुटिल जड-वक्र एव जडबुद्धि लोगोंके लिए किया गया था। यह बात समझ नहीं मालूम होती कि पार्श्वनाथके समयके लोग सरल एव प्रज्ञावान् थे और दो-तीन सौ वर्षोंकी अवधिमें वे जड एव वक्रबुद्धि बन गये हों। पार्श्वनाथके अपरिग्रहमें ब्रह्मचर्यका समावेश होता था। परतु एक बार सप्रदाय बन जानेके बाद शायद अपरिग्रहका यह अर्थ लगाया जाने लगा कि स्त्रीको अपने पास रखकर गृहस्थीका झझट तो न बढाया जाय, पर किसी समय स्त्री प्रसग करनेमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इसलिए चातुर्याममें ब्रह्मचर्यव्रतका समावेश करना पड़ा। गोतम बोधिसत्त्व द्वारा छह-सात बरसतक की गई कठोर तपश्चर्यासे यह साबित होता है कि महावीर स्वामीके जमानेमें तपस्याको बहुत अधिक महत्त्व प्राप्त हो गया था। बुद्धने इस तपश्चर्याका त्याग किया और महावीर स्वामीने उसका अगीकार किया। उससे जैन धर्ममें अचेलकत्व आ गया।

महावीर स्वामी और मक्खलि गोसाल

"महावीर स्वामीके प्रव्रज्या लेनेके बाद अगले वर्ष मक्खलि गोसाल उनसे मिला। गोसाल उनका शिष्य होना चाहता था। परतु महावीर स्वामीने उसे स्पष्टतया स्वीकार नहीं किया। फिर भी गोसाल उनके साथ लगभग आठ वर्षतक रहा। उसके बाद उसने छ माहतक तपश्चर्या करके तेजोलेश्या प्राप्त कर ली और फल्ग्योतिपका अच्छा

अध्ययन किया। इससे उसे बड़ी ख्याति प्राप्त हुई और उसने आजीवक पथकी प्रस्थापना की।' +

महावीर स्वामीकी प्रव्रज्याका जब २७ वाँ वर्ष चल रहा था, तब गोसाल श्रावस्तीमें रहता था। वह अपनेको 'जिन' कहलवाता था। परतु महावीर स्वामीका कहना था कि वह जिन नहीं है। इससे विवाद खड़ा हुआ और गोसालने महावीर स्वामीपर तेजोलेश्या छोड़कर कहा, "आयुष्मन् काश्यप, मेरे इस तपस्तेजसे तुम पित्त एव दाह ज्वरसे पीडित होकर छह महीनेके अन्दर मर जाओगे।" इसपर महावीर स्वामीने उत्तर दिया, "गोसाल, तेरे तपस्तेजसे तेरा ही शरीर दग्ध हुआ है। मैं तो अभी १६ बरसतक जीवित रहनेवाला हूँ। परतु तू ही पित्त-ज्वरकी पीडासे सात दिनके अदर मर जायगा।"* तब गोसाल वहाँसे अपने निवास-स्थानमें गया। उसकी तेजोलेश्याने उसीके शरीरमें प्रवेश किया था, जिससे उसकी स्थिति बड़ी दयनीय हो गई। दाह को शमन करनेके लिए वह लगातार एक आमकी गुठली चूस रहा था, शराब पी रहा था और मिट्टी मिला हुआ पानी शरीरपर छिड़क रहा था। उन्मादवश होकर वह नाच रहा था, गा रहा था और हालाहला कुम्हारिनको (जिसकी भाण्डशालामें वह रहता था) नमस्कार कर रहा था। ऐसी परिस्थितिमें जब उसकी मृत्यु समीप आ गई तो वह अपने शिष्योंसे बोला, "×ए भिक्षुओ, अब मैं शीघ्र ही मरनेवाला हूँ। मेरे मर जानेके बाद तुम लोग मेरे शवके बायें पैरमे मूँज (नामक) घासकी रस्सी बाँधो और मेरे मुँहपर तीन बार थूको। फिर वह रस्सी पकड़कर

+ श्रमण भगवान् महावीर पृष्ठ २५–३७

* महावीर स्वामी काश्यपगोत्रके थे। इसलिए उन्हें काश्यप कहते थे।

× श्र० भ० म० पृ० १२२–१३८

मेरी लाशको श्रावस्तीके सभी चौकों और बाजारोंमेंसे घुमाओ और उद्घोषित करो कि, यह मंखलि गोशालक जिन होनेका ढोंग रच रहा था, पर विना जिन हुए ही मर गया।"

"गोसालके शिष्योंने हालाहलाकी भाण्डशालाके अन्दर ही श्रावस्तीका एक नक्शा बनाया और गोसालके शवको उसके आदेशके अनुसार वहीं घुमाया। यह नाटक समाप्त होनेके बाद उन्होने उस शवको नहलाया और कपडेसे ढँककर पालकीमें बिठाया और सारी श्रावस्तीमें घुमाकर उसका उचित क्रियाकर्म किया।"

मक्खलि नामका विपर्यास

जैन ग्रन्थकारोंका कहना है+ कि मख नामकी एक नटोंकी जाति थी, उस जातिमें जन्म लेनेके कारण गोसालके मखलिपुत्र कहा जाता था। यदि यह सच हो तो उसे मंखपुत्र क्यों नहीं कहा गया? उसमें 'लि' कहाँसे आया? बुद्धघोषाचार्यने तो इससे भी ज्यादा कमाल कर दिखाया है। उन्होंने मक्खलि शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है — मक्खलि उसका नाम था और गौशालामें उसका जन्म होनेसे उसे गोसाल (गोशाल) कहा जाता था। वह तेलका घडा लेकर कीचडमेंसे जा रहा था, तब उसके मालिकने उससे कहा, "देखो भाई, नीचे मत गिरना (मा खलि)।" पर वह गल्तीसे गिर पडा और मालिकके डरसे उठकर भागने लगा। मालिकने उसकी धोती पकड ली। परतु उसे मालिकके ही हाथमें छोडकर वह नगा ही भाग गया। इस प्रकार 'मा-खलि' शब्दपरसे उसे मक्खलि कहा जाने लगा।*

+ श्रमण भगवान महावीर पृ० २८३

* दीघनिकाय अ० १।१८१-१८२, मज्झिम निकाय अ० २।३१४

मक्खलिके नामपर ऐसे श्लेष करके और उसके सम्बन्धमें अन्धाधुन्ध दन्तकथाएँ लिखकर जैन और बौद्ध ग्रन्थकारोंने अपना ओछापन ही प्रकट किया है। ऊपर दी गई मक्खलिकी कथा जैन आगमोंमें ही है। अब हम देखेंगे कि उसमें कहाँ तक तथ्य है।

मक्खलि आजीवक सम्प्रदायका नेता था। परंतु वह उस संप्रदायका संस्थापक नहीं था। उससे पहले नन्दवच्छ और किस संकिच ये दोनो उस सम्प्रदायके नेता थे।

एक बार भगवान् (बुद्ध) राजगृहमें गृध्रकूट पर्वतपर रहते थे। उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान्के पास गया, भगवान्को नमस्कार करके एक तरफ बैठ गया और बोला, " भदन्त, पूरण काश्यपने जो छह अभिजातियाँ बताई हैं वे इस प्रकार हैं :—चिड़ीमार, कसाई आदि क्रूर कर्म करनेवाले लोगोंकी कृष्णाभिजाति, बुरे कर्मोंपर श्रद्धा रखनेवाले श्रमणोंकी नीलाभिजाति, एक वस्त्र रखनेवाले निर्ग्रंथोंकी लोहिताभिजाति, आजीवक श्रावक गृहस्थोंकी हरिद्राभिजाति, आजीवक श्रमणों और श्रमणियोंकी शुक्लाभिजाति, और नन्दवच्छ (वत्स), किस संकिच (कृश सकृत्य) और मक्खलि गोसालकी परमशुक्लाभिजाति। इस प्रकार ये छह अभिजातियाँ पूरण काश्यपने बताई हैं।"*

पूरण काश्यप दूसरे एक बडे संप्रदायका नेता था। वह इन जातियोंका वर्णन करता है और उनमें नन्दवत्स, कृश सकृत्य, और मक्खलि गोसाल, इन तीनोंका ही अयुच्च जातिमें समावेश करता है; इससे ऐसा लगता है कि उस समय ये तीन ही जिन थे।

* यह सुत्तका सारांश है। मूल सुत्त अंगुत्तरनिकाय छक्कनिपात, तुतियपण्णासक, पठमवग्गमें देखिए।

बुद्ध भगवान्को अभी अभी सम्बोधि प्राप्त हुई थी और पंचवर्गीय भिक्षुओंको उपदेश देनेके हेतुसे वे बनारस जा रहे थे। बुद्ध गया और गयाके बीच उन्हें उपक नामका आजीवक मिला और बोला, "आयुष्मन्, तुम्हारा मुख प्रफुल्लित दिखाई देता है। तुम्हारा आचार्य कौन है?" भगवान्ने कहा, "बोधिज्ञान मैंने स्वयं ही प्राप्त किया है, अतः किस आचार्यका नाम मैं बताऊँ!" उपकने पूछा, "तो क्या तुम अनन्त जिन हो गये हो?" भगवान्ने कहा, "आस्रवोंका क्षय करके मेरे जैसे लोग जिन होते हैं। पापधर्मपर विजय पानेके कारण मैं जिन हूँ।" इसपर "हो सकता है!" कहकर उपकने सिर हिलाया और वह दूसरे मार्गसे चला गया।*

बुद्ध भगवान्द्वारा लगाया गया जिन शब्दका अर्थ उपकको नहीं जँचा। क्यों कि उसके मनमें कठोर तपश्चर्यासे ही मनुष्य जिन हो सकता था और ऐसे जिन उसीके संप्रदायमें थे। दूसरे संप्रदायोंमें यह कमी थी। इसीसे पार्श्वनाथका संप्रदाय पिछड़ गया और आजीवकोंका आगे बढ़ गया। अतः अपने सम्प्रदायकी रक्षा करनेके लिए महावीर स्वामीको जिनकी उपाधि प्राप्त करनी पडी। अर्थात् तपश्चर्याके सब प्रकार सीखनेके लिए वे मक्खलि गोसालके पास पहुँचे हों तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। इसीलिए उन्हें वस्त्रत्याग करना पड़ा। प्रव्रज्याके समय उनके पास एक ही वस्त्र था। यानी वे एकचेलक निर्ग्रंथोंमेंसे एक थे। गोसालके साथ रहनेके बाद उन्हें वह वस्त्र छोड़ना पड़ा। वस्त्र रखकर जिन होना गोसालकी दृष्टिमें असंभव था। महावीर स्वामीने आजीवकोंकी सारी तपश्चर्या की थी, फिर भी वे अपना चातुर्याम धर्म छोड़नेको तैयार नहीं थे। वह धर्म छोड़कर उन्होंने मक्खलिका नियतिवाद स्वीकार किया होता, तो वे भी उस पंथके एक जिन

* मज्झिमनिकाय, अरियपरियेसन सुत्त, महावग्ग १।१२६।१८

बन जाते। परंतु सारी तपश्चर्या समाप्त होनेके बाद महावीर स्वामी अपने पहलेके निर्ग्रंथ सम्प्रदायमें चले आये होंगे। उनका नेतृत्व निर्ग्रंथोंने स्वीकार किया, फिर भी उनका अचेलकत्व स्वीकार करनेके लिए वे तैयार नहीं थे। महावीर स्वामीने भी इस सम्बन्धमें अधिक आग्रह नहीं रखा। संभवतः यह तै पाया कि हर कोई अपनी इच्छाके अनुसार सचेलक या अचेलक बने। क्यों कि पालि त्रिपिटकमें निर्ग्रंथोंको अचेलक नहीं कहा गया है। अंगुत्तरनिकायके उल्लिखित अवतरणसे यह स्पष्ट दिखाई देता है कि निर्ग्रंथोंके पास कमसे कम एक वस्त्र रहता था। बौद्ध वाङ्मयमें अचेलक शब्द केवल आजीवकोंके लिए प्रयुक्त किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि अशोकके जमानेतक तो केवल आजीवक ही नग्न रहते थे।

आजीवक मतका विपर्यास

हमें ऐसी दृढ़ शंका है कि गोसालके मतका भी बौद्धों और जैनोंने बहुत विपर्यास किया होगा। गोसाल यह कहता था कि सारे प्राणी नियति (दैव), संगति और भाव (स्वभाव) इन तीन गुणोंसे परिणत होते हैं[1]। मनुष्य सौ बरसके आगे-पीछे मर जाता है या अमुक पदार्थके अमुक गुण होते हैं, यह नियति समझनी चाहिए। संगतिका गुणगान तो स्वयं बुद्धने ही किया है और हमारे मध्ययुगीन साधु-सन्तोंने उसपर बहुत जोर दिया है[2]। आधुनिक कालमें भी सोशलिस्ट (साम्यवादी) संगतिको उतना ही महत्त्व देते हैं[3]। स्वभावसे ही मनुष्य कोई

१ नियति-संगति-भाव-परिणता। दीघ० १।२०

२ भारतीय संस्कृति और अहिंसा पृ० १७५–१७७

३ यहाँपर संगतिका अर्थ है परिस्थिति। Merrie England नामक पुस्तकमें पढ़ी हुई एक घटनाका स्मरण यहाँ होता है। वह इस प्रकार है :—

कार्य करनेको प्रवृत्त होना है। किसीको डाक्टरी पसन्द आती है तो किसीको राजनीति, अन मक्खलि गोसालको केवल नियतिवादी ठहराकर उसकी हँसी उड़ाना अत्यंत अनुचित है। यह बात विशेषत: जैन ग्रंथकारोंने की है। जैनोंके कहनेके अनुसार गोसालका मत यदि त्याज्य होता, तो

एक प्रोटेस्टंट पादरी लंदनकी गलियोंमें आवारा भटकनेवाले तीन हजार लड़कोंको जमा करके उन्हें कनाडा ले गया और वहाँ एक बड़े खेतपर उन्हें रखकर उनकी शिक्षा-दीक्षाका अच्छा प्रबन्ध किया। ये लड़के इंग्लैंडमें यों ही बेकार भटकते रहते, तो उनमेंसे अधिकतर समाजके लिए खतरनाक बन जाते; परंतु कनाडाके खुले खेतोंमें उनकी परवरिश बहुत अच्छी हुई और उनमेंसे एक भी गुनहगार नहीं निकला।

प्रथम महासमरके बाद रूसमें लाखों बच्चे लावारिस बनकर इधर-उधर भटकने लगे। उनकी बेहद अधोगति हुई। उन्हें सुधारनेके लिए देरजेन्स्की नामक सोवियत कमिसारने उपनिवेश बसाये। उनमेंसे खारकोव शहरके पासका बड़ा उपनिवेश मैंने सन् १९३२ ईसवीमें देखा था। इस उपनिवेशमें सौ-डेढ़ सौ लड़कियाँ थीं और दो सवा दो सौ लड़के। उनके लिए तीन सौ एकड़ खेती और बोअरिंग मशीनें तैयार करनेका कारखाना था। इस कारखानेमें एक साथ ४० लड़के काम सीखते थे। हर रोज़ चार घंटे बौद्धिक शिक्षा और चार घंटे खेती-बाड़ी या कारखानेमें यंत्र बनानेका काम बारी-बारीसे सिखाया जाता था। लड़कियोंकी बस्ती अलग थी और लड़कोंकी अलग। मगर सबके लिए एक नाट्यगृह था और बीच बीचमें वहाँ विद्यार्थी और विद्यार्थिनियाँ नाटक खेला करती थीं। उनका अन्तर्गत प्रबन्ध वे स्वयं ही देखें ऐसा नियम था। और जबतक कोई खास जरूरत न आ पड़ती, अध्यापक गण उनके प्रबन्धमें हस्तक्षेप नहीं करते थे। कुल प्रबन्ध इतना अच्छा था कि सनाथ बच्चोंको भी उनके माँ-बाप इस बस्तीमें भेजनेको उत्सुक रहते थे; परन्तु उन्हें दाखिल कराना संभव नहीं था। इस बस्तीके बच्चोंको अगर पहलेकी तरह भटकने दिया जाता तो उनमेंसे बहुत-सारे बच्चे खतरनाक गुनहगार बन जाते। ऐसे बच्चोंको देरजेन्स्कीने कैसे सुधारा, इसका इतिहास बड़ा दिलचस्प है।

क्या सुन्दर गुफायें बनवाकर अशोकने उस सम्प्रदायका गौरव किया होता ? जिस प्रकार अशोकने तीन गुफायें बनवाई थीं, उसी प्रकार उसके पोते (दशरथ) द्वारा भी आजीवकोंको तीन गुफायें दी जानेके शिलालेख प्रसिद्ध हैं। अशोकके केवल सप्तम शिलालेखमें निर्ग्रंथोंका उल्लेख है, परन्तु इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता कि अशोकने उन्हें गुफा या विहार बनवा दिये हों। बौद्ध संघके बाद अशोक आजीवकोंका ही आदर करता था, उसका कारण केवल उनकी तपश्चर्या नहीं बल्कि उनका सदाचार ही रहा होगा। इसके लिए एक प्रमाण संयुत्तनिकाय के सगाथावग्गमें मिलता है। मक्खलि गोसालके सम्बन्धमें सहली देवपुत्र कहता है —

> तपो जिगुच्छाय सुसंवुतत्तो
> वाचं पहाय कलहं जनेन।
> समो सवज्जा विरतो सच्चवादी
> न हू नून तादी पकरोति पापं ॥*

[अर्थात् तपस्यासे हिंसामय पापका त्याग करनेके कारण जिसका मन सुसंवृत हो गया है, जो सत्यवादी लोगोंसे कलह उत्पन्न करनेवाली वाणी छोड़कर और निंद्य कर्मोंसे विरत होकर समभावका आचरण रखता है, वह कभी पाप नहीं करता।]

यह उस समयका लोकमत देवपुत्रके मुँहसे कहलवाया गया है। ऐसे सत्पुरुषकी मनमानी निन्दा करके जैनों और बौद्धोंने अपने अपने पंथोंका कोई कल्याण किया हो, ऐसा मुझे नहीं लगता। अशोकके इस उपदेशपर जैनों और बौद्धोंने बिल्कुल ध्यान नहीं दिया कि, "उस उस सम्बन्धमें सभी सम्प्रदायोंका गौरव रखा जाय। ऐसा करनेसे अपने सम्प्रदायकी

* देवपुत्तसंयुत्त, नानातित्थियवग्ग।

अभिवृद्धि होती है और दूसरे पंथका उपकार होता है। जो इससे विपरीत आचरण रखता है वह अपने पंथकी हानि करता है और दूसरे पथका अपकार करता है। जो कोई अपने पंथका गौरव एव दूसरे पंथकी निन्दा करता है वह अपने पंथकी भक्तिके कारण वैसा करता है; क्योंकि वह अपने पथका बखान करना चाहता है†।

इस प्रकारके विपर्यासके कारण प्रारभमें इन दो सम्प्रदायोको थोड़ासा लाभ भले ही पहुँचा हो, मगर उससे उनकी असहिष्णुता बढ़ती गई और उसके कारण उनमें फूट पडकर ये दोनों सम्प्रदाय क्षीण हो गये। इस प्रकार अशोकका यह कथन सत्य साबित हुआ कि 'अत्त पासण्डं छनति' अथवा 'उपहनति'।

उस जमानेमें नन्दवच्छ, किस सकिच्च और मक्खलि गोसाल ही जिन थे। अर्थात् आजीवकोको ही जैन कहना चाहिए। परतु अनेक कारणोंसे उस सम्प्रदायका ह्रास होता गया और निर्ग्रंथ लोग अपने ही तीर्थंकरको सच्चा जिन मानने लगे और आगे चलकर अपनेको जैन कहलवाने लगे। बुद्धको भी बौद्ध लोग जिन कहते थे, परतु उन्होंने उस नामको अधिक महत्त्व नहीं दिया, एक तरहसे यह अच्छा ही हुआ; वरना इस विषयमें बडे झगडे हो जाते कि सच्चे जैन कौन हैं।

चातुर्याम धर्मका बुद्धद्वारा विकास

इसका उल्लेख ऊपर आ चुका है कि वप्प शाक्य निर्ग्रंथोंका श्रावक था।* इससे यह स्पष्ट है कि निर्ग्रन्थोंका चातुर्याम धर्म शाक्य देशमें प्रचलित था। परतु ऐसा उल्लेख कहीं नहीं मिलता कि उस देशमें निर्ग्रन्थोंका कोई आश्रम हो। इससे ऐसा लगता है कि निर्ग्रन्थ श्रमण

† अशोकका बारहवाँ शिलालेख। * देखिए पृष्ठ १४

बीच-बीचमें शाक्य देशमें जाकर अपने धर्मका उपदेश करते थे। शाक्योंमें आलारकालामके श्रावक अधिक थे; क्योंकि उनका आश्रम कपिलवस्तु नगरमें ही था।× आलारके समाधिमार्गका अध्ययन गोतम बोधिसत्वने बचपनमें ही किया; + फिर गृहत्याग करनेपर वे प्रथमतः आलारके ही आश्रममें गये और उन्होंने योगमार्गका अध्ययन आगे चलाया।‡ आलारने उन्हें समाधिकी सात सीढ़ियाँ सिखाईं। फिर वे उद्रक रामपुत्रके पास गये और उससे समाधिकी आठवीं सीढी सीखी, परंतु उतनेसे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। क्योंकि उस समाधिसे मनुष्यके झगड़े खत्म होना संभव नहीं था। तब बोधिसत्त्व उद्रक रामपुत्रका आश्रम छोड़कर राजगृह चले गये। वहाँके श्रमण संप्रदायमें उन्हें शायद निर्ग्रन्थोंका चातुर्याम-संवर ही विशेष पसंद आया; क्यो कि आगे चलकर उन्होंने जिस आर्य अष्टांगिक मार्गका आविष्कार किया, उसमें इस चातुर्यामका समावेश किया गया है।

परंतु उस जमानेमें इस चातुर्यामको गौणत्व प्राप्त होकर तपश्चर्याको महत्त्व मिल गया था। आजीवक संप्रदायमें ही जिन थे और सबको ऐसा लगता था कि जिन हुए बिना धर्मोपदेश करनेका अधिकार प्राप्त नहीं होता। इसी लिए महावीर स्वामीने गोसालकी मददसे कठोर तपस्या की और तभी निर्ग्रंथोंने उन्हें अपना नेता माना। इसी लिए गोतम बोधिसत्वको भी तपश्चर्यामें कमाल करके अपना मार्ग प्रशस्त करना उचित मालूम हुआ। लगभग छह वर्ष तक तपश्चर्या करनेके बाद उन्हें पूरा विश्वास हुआ कि उनके कर्मयोगमें देहदण्डनसे कोई लाभ नहीं हो सकता; बल्कि वह हानिकर ही होगा। साथ ही केवल चार यामोंसे

× भगवान् बुद्ध पृ० ९२ + भ० बु० पृ० १०३-१०५
‡ भ० बु० पृ० ११६-११७

काम नहीं चलेगा, उनमें समाधि एवं प्रज्ञाको भी जोड़ देना चाहिए। चार याम शिव (कल्याणपद) हैं, समाधि शांत और सुन्दर है, और प्रज्ञा सत्यबोधकर है।

आजीवक या निर्ग्रंथ जो तपश्चर्या करते थे, वह किसलिए ? इसी-लिए कि पूर्वजन्मके कर्मोंका नाश होकर आत्माको कैवल्य प्राप्त हो सके×। परंतु जिस आत्माके लिए यह तपश्चर्या करनी है, उसका अस्तित्व ही कुछ श्रमण स्वीकार नहीं करते थे। ऐसे मतका समर्थक अजित केसकंबल था।* पूरण काश्यपका कहना था कि आत्मा अमर है और उसे किसी बातसे हानि नहीं पहुँचती। + निम्नलिखित देवपुत्र संयुत्तकी गाथासे यह दिखाई देता है कि पूरण काश्यपका मत माननेवाले बहुत-से लोग थे।

बुद्धके पास आकर असम देवपुत्र यह गाथा कहता है —

> इध छिन्दित मारिते हतजानीसु कस्सपो।
> न पाप समनुपस्सति पुञ्ञं वा पन अत्तनो।
> स वे विस्सासमाचिक्खि सत्था अरहति माननं॥

[अर्थात् मारपीट और लूटपाट करनेमें आत्माको पाप या पुण्य नहीं है, ऐसा पूरण कश्यप देखता है। वह धर्मगुरु (शास्ता) मोक्षका विश्वास दिलाता है, अतः वह माननीय है।]

अतः ऐसे आत्मवादमें कौन सच्चा और कौन झूठा ? गोतम बोधि-

× इति पुराणानं कम्मानं तपसा व्यन्तीभावा, नवानं कम्मानं अकरणा आयतिं अनवस्सवो, आयतिं अनवस्सवा कम्मक्खयो, कम्मक्खया दुक्खक्खयो, दुक्खक्खया वेदनाक्खयो, वेदनाक्खया सब्बं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सती ति।—चूळ-दुक्खक्खन्धसुत्त, मज्झिमनिकाय, मूलपण्णासक।

* म० बु० पृ० १८६ + म० बु० पृ० १८४

सबको यह स्पष्ट दिखाई दिया कि ऐसे वादोंसे सत्कर्म योगमें कोई लाभ नहीं बल्कि हानि ही होती है। और उन्होंने आत्माको बीचमें न लाकर अपना मार्ग निकालनेका प्रयत्न किया, जब उन्हें वह मार्ग मिल गया तभी वे बुद्ध हो गये। उनके अष्टांगिक मार्गके लिए आत्माकी बिलकुल आवश्यकता नहीं है। इस संसारमें दुःख निपुल है; उसका कारण मानवोंकी तृष्णा है और उसके आत्यंतिक निरोधकी ओर ले जानेवाला अष्टांगिक मार्ग है। इस मार्गका विवरण 'भारतीय संस्कृति और अहिंसा' (पृ. ५६-६२) और 'भगवान् बुद्ध' (पृ. १३८-१४४) इन दो पुस्तकोंमें आ चुका है; अतः यहाँपर उसे हम नहीं दुहराते।

इस आर्य अष्टांगिक मार्गका समावेश शील, समाधि और प्रज्ञा इन तीन स्कन्धोंमें होता है। सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्म और सम्यक् आजीव इन तीन अंगोंका समावेश शील स्कन्धमें होता है; सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् दृष्टि एवं सम्यक् संकल्प इन दो अंगोंका समावेश प्रज्ञास्कन्धमें होता है+। शीलस्कन्ध बुद्ध धर्मकी नींव है। शीलके बिना अध्यात्ममार्गमें प्रगति होना संभव नहीं है। पार्श्वनाथके चार यामोंका समावेश इसी शीलस्कन्धमें किया गया है* और उसीकी रक्षा एवं अभिवृद्धिके लिए समाधि तथा प्रज्ञाकी आवश्यकता है। केवल आकंखेय सुत्त (मज्झिमनिकाय) पढ़नेसे भी पता चल जायगा कि भगवान् बुद्धने शीलको कितना महत्त्व दिया है। अतः यह स्पष्ट है कि बुद्धने पार्श्वनाथके चारों यामोंको पूर्णतया स्वीकार किया था। उन्होंने उन यामोंमें आलारकालामकी समाधि और अपनी खोजी हुई

+ देखिए : चूळवेदल्लसुत्त, मज्झिमनिकाय। * भारतीय संस्कृति और अहिंसा पृ ५९–६०। शील, समाधि और प्रज्ञाका वर्णन 'बुद्ध, धर्म, आणि संघ' नामक पुस्तकके दूसरे व्याख्यानमें आया है। उसे वहाँ देखा जा सकता है।

चार-आर्यसत्यरूपी प्रज्ञाको जोड़ दिया और उन यामोंको तपश्चर्या एवं आत्मवादसे मुक्त कर दिया।

बुद्धने तपश्चर्याका त्याग किया था, इसलिए तपस्वी लोग उन्हें और उनके शिष्योंको विलासी कहते थे। इस सम्बन्धमें दीघनिकायके पासादिकसुत्तमें भगवान् बुद्ध चुन्दसे कहते हैं, "ऐ चुन्द, अन्य सम्प्रदायोंके परिव्राजक कहेंगे कि शाक्यपुत्रीय श्रमण मौज उड़ाते हैं। उनसे कहो कि मौज या विलास चार प्रकारके हैं। कोई अज्ञ मनुष्य प्राणियोंको मारकर मौज उड़ाता है, यह पहली मौज हुई। कोई व्यक्ति चोरी करके मौज उड़ाता है, यह दूसरी मौज हुई। कोई व्यक्ति झूठ बोलकर मौज उड़ाता है, यह तीसरी मौज हुई। कोई व्यक्ति उपभोग वस्तुओंका यथेष्ट उपभोग करके मौज उड़ाता है, यह चौथी मौज (कामसुखल्लिकानुयोग) हुई। ये चार मौजें हीन, गँवार, पृथक्-जन-सेवित, अनार्य एवं अनर्थकारी हैं।" अर्थात् बुद्धके मतमें चार यामोंका पालन करना ही सच्ची तपस्या है।

इसका प्रमाण बौद्ध या जैन साहित्यमें नहीं मिलता कि पार्श्वनाथ आत्मवादमें पड़ते थे। परंतु बुद्धसमकालीन निर्ग्रन्थोंने आत्माको स्वीकार किया। ऊपर बताया जा चुका है कि तपश्चर्या और चार यामोंके द्वारा पूर्वजन्मके पापकर्मका क्षय करके आत्माको दुःखसे मुक्त करना ही उनका ध्येय था*। इसी पासादिक सुत्तमें भगवान् बुद्धने इसका उत्तर दिया है कि मैं इस आत्मवादमें क्यों नहीं पड़ा। भगवान् कहते हैं, "हे चुन्द, अन्य सम्प्रदायोंके परिव्राजक पूछेंगे कि मृत्युके पश्चात् आत्मा उत्पन्न होता है या नहीं, आदि प्रश्नोंका स्पष्टीकरण श्रमण गोतमने क्यों नहीं किया? उनसे कहो कि, आयुष्मन्ता, यह हितकारी

* पृष्ठ २९ पर पहली टिप्पणी देखिए।

नहीं है, धर्मोपयोगी नहीं है, ब्रह्मचर्यके लिए आधारभूत नहीं है, निर्वाणका कारण नहीं है। तब वे पूछेंगे कि, यह दु ख, यह दु खका समुदय, यह दु खका निरोध और यह दु खनिरोधगामी मार्ग, इनका स्पष्टीकरण भगवान्ने किया है, सो क्यों? क्यो कि वह हितकारी है, धर्मोपयोगी है, ब्रह्मचर्यके लिए आधारभूत है निर्वाणका कारण है।"+

योगसूत्रमे याम

यद्यपि निर्ग्रंथों (जैनो)ने तपश्चर्याका अगीकार किया और आत्मवाद नहीं छोडा, तथापि चार यामोंका प्रचारकार्य भी जारी रखा। चार यामोंमे महावीर स्वामीने ब्रह्मचर्यको जोड दिया। जैन साधुओंका यह उपदेश रहता था कि इस ब्रह्मचर्यका पालन गृहस्थोंको भी यथासम्भव करना चाहिए। 'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा (योगसूत्र २।३) सूत्रमे इन यामोंको यम कहा गया है और 'जातिदेशकाल-समयानवच्छिन्ना सार्वभौमा महाव्रतम्' में महाव्रत कहा गया है। याना पार्श्वनाथके यामों और महावीर स्वामीके महाव्रतो, दोनोंका यहाँ उल्लेख है। योगसूत्र काफी आधुनिक है। यह नहीं कहा जा सकता कि उससे पहले योगिसम्प्रदायने इन यामोंको कब स्वीकार किया था। पर इतनी बात सही है कि उस सम्प्रदायने इन यामोका प्रचार बिल्कुल नहीं किया। यदि वे इन यामोंको सार्वजनिक बना देते तो जैन और बौद्ध साहित्यके समान योगसूत्र भी ब्राह्मणोंके तिरस्कारका पात्र बन जाता। ब्राह्मणोंको इसमें कोई आपत्ति नहीं थी कि कुछ योगी एकान्तमें इन यामोंका अभ्यास करते रहें। क्यों कि वे उनकी वैदिक हिंसामें बाधा नहीं पहुँचाते थे।

+ यह सारांश है। ये ही बातें चूळमालुंक्यपुत्तसुत्तमें भी आई हैं। म० नि० पृ० १९४-१९६।

बौद्ध और जैन धर्मका प्रसार

आजीवक, निर्ग्रन्थ, बौद्ध आदि श्रमणसंघ मगध और कोसल देशोंमें उदित हुए और प्रारंभमें वे प्रधानतया इन्हीं दो देशोंमें और आसपासके राज्योंमें अपने अपने धर्मका प्रचार करते रहे। अशोकके शासन-कालमें यह स्थिति बदल गई। उसने इन श्रमणसंघोंको काफी प्रोत्साहन दिया। बौद्ध संघका तो वह भक्त ही था और बौद्ध धर्मके प्रचारके लिए उसने जो कुछ किया वह प्रसिद्ध है। इतना होते हुए भी वह अन्य श्रमणसंघोंके साथ उदारताका बरताव करता था। विशेषत आजीवक संघपर उसकी विशेष कृपा थी। यह बात बार्बर (गयाके पास) पहाड़की गुफाओंमें मिले हुए उसके शिलालेखोंसे दिखाई देती है×। उसके सातवें स्तंभलेख-परसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आजीवकोंके बाद वह निर्ग्रन्थसंघका भी खयाल रखता था।

श्वेताम्बर जैनोंका कहना है* कि अशोकका पोता संप्रति, जो कि उज्जैनका राजा था, प्रथमत जैन संघका भक्त हुआ। उसके बाद कलिंग देशमें खारवेल राजा जैन संघका भक्त बना। मगध देशमें निर्ग्रंथ अक्सर सवस्त्र होते थे, अचेलक शायद ही होते। परन्तु वे जैसे जैसे दक्षिणकी ओर गये, वैसे वैसे नग्नताकी ओर झुकते गये। और इधर जो लोग पश्चिमकी तरफ गये उन्होंने अपना सवस्त्रत्व नहीं छोड़ा। इसका मुख्य कारण शायद आबोहवा थी। हो सकता है कि इसके पीछे राजाओंकी अभिरुचि भी रही हो। नग्न जैन साधुओंको जिनकल्पी और सवस्त्र साधुओंको स्थविरकल्पी कहते हैं। इस सम्बन्धमें विस्तृत

× देखिए, पृष्ठ २९–३०।

* केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, पहला वोल्युम पृ० १६६।

चर्चा पंडित कल्याणविजय गणीने अपनी पुस्तक ‘ श्रमण भगवान् महावीर’के छठे परिच्छेदमें की है। इतनी बात स्पष्ट है कि कलिंग होते हुए जो साधु दक्षिणमें गये वे जिनकल्पी हो गये और जो उज्जैन होते हुए गुजरात पहुँचे वे स्थविरकल्पी हो गये। इन दोनों सम्प्रदायोंने जैन धर्मका बहुत प्रचार किया, परंतु व्रत-बन्धनोंमें बद्ध होनेके कारण वे हिन्दुस्तानसे बाहर न जा सके। यह कार्य बौद्ध संघने किया। ईरानसे लेकर चीनतक बौद्ध भिक्षुओंने सब देशोंमें बौद्ध धर्मको फैलाया।

बौद्ध और जैन श्रमणोंका ह्रास

मनुष्य-मनुष्योंमें झगड़े और मार पीट अनादिकालसे चली आई है। उनसे ऊबकर जंगलमें जाकर तपस्या करनेवाले ऋषि-मुनि बुद्ध पूर्वकालमें केवल हिन्दुस्तानमें ही थे। उनके भी संघ थे। परंतु वे सामाजिक व्यवस्थामें हस्तक्षेप नहीं करते थे। अरण्यमें निवास करनेसे उन्हें जंगली प्राणियोंके प्रति आदर रखना ही पड़ता था। अत दया तो उनकी तपस्याका एक अंग ही बन गया। परंतु यह दया प्राणियोंतक ही सीमित थी। इधर मनुष्य-समाजमें जो मारपीट चलती थी, उसके प्रति वे उदासीन थे। इतना ही नहीं बल्कि यज्ञमें की जानेवाली पशुहिंसाको भी बंद करनेका प्रयत्न उन्होंने नहीं किया।

ऋषियोंके इस दयाधर्मको सार्वजनिक बनानेका प्रयत्न प्रथमत पार्श्वनाथने किया। उन्होंने यह जान लिया कि चोरी, असत्य और परिग्रहका त्याग किये बिना मनुष्य-समाजमें दयाधर्मका प्रसार होना कठिन है, और उसके अनुसार अपने चातुर्याम धर्मका उपदेश देना शुरू किया। उस समयके राजा लोग ऋषिमुनियोंको बहुत मानते थे, अत उन्हींके मार्गसे चलनेवाले इन श्रमणोंका विरोध उन्होंने नहीं किया। परंतु उन्होंने यज्ञ-याग भी नहीं छोड़े। बुद्धसमकालीन

प्रसेनजित और बिम्बिसार (श्रेणिक) यज्ञ करते ही थे। इतना था कि उनके राज्योंमें श्रमणोंको धर्मोपदेश देनेकी स्वतंत्रता थी। अतः श्रमणोंका विशेष सम्बन्ध जनताके साथ होता था। अधिकसे अधिक कोई मध्यवित्त व्यापारी उनके निवासके लिए विहार या उपाश्रय बनाकर उनकी मदद करता। परन्तु उनका निर्वाह प्रधानतया भिक्षापर ही होता था। अर्थात् उनका धर्म बहुजनसमाजके हितसुखके लिए होता था—बहुजनहिताय बहुजनसुखाय।

परन्तु अशोककालके बाद यह स्थिति बदल गई। अशोकने श्रमण-संघोंका मान-सम्मान बहुत बढाया। इससे उसीके समयमें उनमें विशेष साम्प्रदायिकता आई और वे आपसमें झगडने लगे। उन झगडोंको मिटानेके प्रयत्नोंके उल्लेख अशोकके शिलालेखों और स्तंभलेखोंमें स्पष्ट रूपमें मिलते हैं। परन्तु उसके प्रयत्न सफल नहीं हुए। श्रमणोंका साम्प्रदायिक परिग्रह बढता गया और होते होते आजीवक आदि श्रमणसम्प्रदाय तो नष्ट ही हो गये। केवल बौद्ध और जैन दो ही बाकी रह गये। परन्तु उनकी परिग्रहदृष्टि बढ जानेसे उनमें भी आपसी झगडे शुरू हो गये। जैनोंमें श्वेताम्बर और दिगम्बर तथा बौद्धोंमें महायान और स्थविरवाद—जिसे महायानी लोग हीनयान कहते थे—जैसे दो प्रमुख पंथ हो गये और फिर इन पंथोंमें भी अनेक भेद उत्पन्न हो गये। जिस प्रकार साधारण लोग संपत्ति-परिग्रहके लिए झगड़ते हैं, उसी प्रकार ये श्रमण सम्प्रदाय परिग्रहके लिए झगडने लगे।

मज्झिम निकायके अलगद्दूपमसुत्तमें भगवान् बुद्ध कहते हैं —"ऐ भिक्षुओ, जब कोई यात्री किसी बड़ी नदी या तालाबके पास पहुँचेगा और देखेगा कि उसका किनारा सुरक्षित नहीं है, वहाँ भय है, और उसपारका किनारा सुरक्षित और निर्भय है, पर वहाँ उसपार जानेके लिए नौका या पुल नहीं है, तो उस समय वह सूखी लकड़ियाँ और

घास जमा करके उनसे एक बेड़ा तैयार करेगा और उसके सहारे उस नदी या तालाबके उस पार जायगा। वहाँ वह कहेगा कि, 'इस बेड़ेने मुझपर कितने उपकार किये हैं! अतः इसे कंधे या सिरपर उठाकर ले जाना उचित है।' क्या ऐसा हम कह सकते हैं कि ऐसा कहनेवाले उस आदमीने उस बेड़ेके प्रति अपना कर्तव्य पूरा किया?"

भिक्षु बोले, "नहीं भदन्त!"

भगवान् बोले, "उस आदमीके लिए यही उचित होगा कि, 'यह बेड़ा मेरे बहुत काम आया'—ऐसा कहकर वह उसे नदीकिनारे या पानीमें छोड़कर चला जाय। मेरा बतलाया हुआ धर्म इसी बेड़ेकी तरह है। धर्म निस्तरणके लिए है न कि ग्रहणके लिए। यह जानकर आप लोग धर्मका भी परिग्रह न करें; फिर अधर्मकी तो बात ही क्या?"

परंतु ये सारे उपदेश पुस्तकोंमें ही रह गये। श्रमण अपने-अपने संप्रदायोंको सिरपर उठाकर घूमने लगे और उसके लिए उन्हें राजाओंकी मनुहारें करनी पड़ीं। अपने विहारोंकी रक्षाके लिए बौद्ध भिक्षुओंद्वारा राजासे मदद लिए जानेका एक उदाहरण मैंने अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति और अहिंसा' (पि. २।१०७–११२) में दिया है। अब यहाँ जैन साधुओंके कुछ उदाहरण देता हूँ।

कालक कथा

विक्रम संवत्से कुछ वर्ष पहले उज्जैनमें गर्दभिल्ल राज्य करता था। उस समय जैन साधु कालकाचार्य अपनी जैन साध्वी बहनके साथ वहाँ पहुँचा। गर्दभिल्ल राजाने उस साध्वीको ज़बरदस्तीसे अपने रनवासमें रख लिया। तब कालकाचार्य अकेला ही सिन्धुनदीके प्रदेशमें चला गया। वहाँ शाहि नामक शकमांडलिक राजाओंका राज्य था। उन्हें कालकाचार्यने अपने वशमें कर लिया और उन्हें काठियावाड़ (सौराष्ट्र) मार्गसे उज्जैन लाकर गर्दभिल्लको हरा दिया। इस लड़ाईमें गर्दभिल्ल मारा गया।

(यह कथा ऐतिहासिक है या नहीं, इस सम्बन्धमें विवाद है। देखिए, केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, पृष्ठ १६७–१६८ और ५८२)

वप्पभट्टिसूरि-कथा

वप्पभट्टिका असल नाम सूरपाल था। उसके पिताका नाम बप्प और माताका भट्टि था। उसकी होशियारी देखकर सिद्धसेनसूरि नामके जैन आचार्यने उसे दीक्षा देनेका निश्चय किया। परन्तु माँ-बापका वह इकलौता बेटा था, इसलिए वे तैयार नहीं हुए। अन्तमें आचार्यके अत्याग्रहकी खातिर, उन्होंने इस शर्तपर उसे आचार्यके हवाले कर दिया कि सूरपालका नाम उन दोनोंके नाम पर रख दिया जाय। आचार्यने उसे छसकी साल बरसकी अवस्थामें दीक्षा दी और उसका नाम भद्रकीर्ति रखा। परंतु उसके माँ-बापके साथ हुए करारके अनुसार सभी लोग उसे बप्पभट्टि कहने लगे।

बप्पभट्टि जब थोडा बड़ा हुआ तो आम नामके युवकसे उसकी भेंट हुई। आमकी माता कनौजके राजा यशोवर्माकी रानी थी, उसकी सौतकी कोशिशोंके कारण राजाने उसे निर्वासित कर दिया और वह गुजरातमें रामसण नामके गाँवमें जाकर रही। बादमें जब उसकी सौत मर गई तो यशोवर्माने आमकी माँको वापस बुला लिया। पर आम गुजरातमें ही रह गया। बप्पभट्टि आमको लेकर अपने आचार्यके पास गया और आचार्यने आमको आश्रय दिया। बप्पभट्टिके साथ वह भी अध्ययन करने लगा।

आगे चलकर यशोवर्माका देहान्त हुआ और आमको कनौजकी गद्दी मिली, उसने बप्पभट्टिको बुलवाकर उसे आचार्यपद दिया। गौड देशके राजा धर्मके साथ आमका वैर था। तब उन दोनोंने यह तय

किया कि दोनों तरफके पंडित सरहदपर जमा होकर वाद-विवाद करें और जिसके पंडितोंकी जय हो उस राजाको दूसरा राजा अपना राज दे दे। उसके अनुसार सरहदपर एक स्थानमें ये दोनों राजा आ गये। आमकी ओरसे बप्पभट्टिको और धर्मकी ओरसे बौद्ध पंडित वर्धनकुञ्जरको चुना गया। उन दोनोंका वाद-विवाद छह मासतक चलता रहा और अन्तमें बप्पभट्टिकी जीत हुई। उसने आम राजाको समझाकर राजा धर्मका राज उसे लौटा दिया और तबसे वर्धनकुञ्जरके साथ उसकी मित्रता हो गई।

नन्नसूरि और गोविन्दसूरि बप्पभट्टिके गुरुबन्धु थे। उनकी स्तुति वह आम राजाके पास बारबार करता। एक बार भेस बदलकर आम राजा नन्नसूरिके पास गया। वहाँ छत्र-चामर आदि ठाठबाटके साथ बैठे हुए नन्नसूरिको देखकर आमने उसकी कड़ी आलोचना की। दूसरी बार आम वहाँ गया तब नन्नसूरि जैन मंदिरमें बैठकर वात्स्यायनके कामसूत्रपर भाषण दे रहे थे। तब आम जान गया कि यह व्यक्ति विद्वान् अवश्य है, पर सच्चरित साधु नहीं है।

आमको समझानेके लिए गोविन्दसूरिने आदिनाथचरित्रका एक नाटक रचा और उसका प्रयोग दरबारमें करवाया। उसमें इतना वीर रस लाया गया था कि उससे राजाके मनमें शौर्यका संचार हुआ और वह तलवार खींचकर उठ खड़ा हुआ। तब अंगरक्षकोंने उसे समझाया कि वह युद्ध नहीं बल्कि नाटक है। नन्नसूरि और गोविन्दसूरि भी भेस बदलकर उस सभामें बैठे थे। राजाकी हालत देखकर गोविन्दसूरि प्रकट होकर बोले, "राजन्, क्या यह उचित हुआ कि आपको यह नाटक वास्तविक प्रतीत हुआ? यदि नहीं, तो नन्नसूरिके मुँहसे वात्स्यायनके कामशास्त्रपर व्याख्यान सुननेपर आपको शंका आना कहाँतक उचित था?" यह सुनकर राजा आमने क्षमा माँगी।

एक बार आमराजाने समुद्रपाल राजाके राजगिरि किलेपर धावा बोल दिया; मगर किला हाथ नहीं आ रहा था। तब बप्पभट्टिकी सलाहसे आमके पोते भोजकुमारको, जिसका जन्म अभी अभी हुआ था, वहाँ लाया गया और उसे पालकीमें बिठाकर आगे रखकर हमला बोल दिया गया, तब किला सर हो गया।

आम राजा संवत् ८९० में स्वर्गवासी हुआ और उसका बेटा दुन्दुक गद्दीपर आया। यह दुंदुक एक वेश्याके अधीन होकर अपने बेटे भोजको मार डालना चाहता था। पर भोजका मामा उसे अपने घर पाटलीपुर ले गया। उसके बाद दुंदुकने भोजको वापस ले आनेके लिए बप्पभट्टिको तंग करना शुरू किया। बप्पभट्टि कुछ न कुछ बहाने बनाकर कुछ समय तक तो उसे टालते रहे परंतु अन्तमें दुन्दुकके अत्याग्रहके कारण भोजको ले आनेके लिए वे पाटलीपुर गये। अब वे इस संकटमें फँस गये कि यदि भोजको ले जाते हैं तो दुन्दुक उसे मार डालेगा और यदि नहीं ले जाते हैं, तो मुझे और अन्य जैन साधुओंको सतायेगा। इस संकटसे मुक्ति पानेके लिए उन्होंने २१ दिन अनशन करके देहत्याग कर दिया। उस समय वे ९५ बरसके थे। उनका जन्म संवत ८०० में हुआ, ८०७ में उन्हें दीक्षा मिली, ८११ में आमराजाने आचार्य पद दिया और ८९५ में उनका देहान्त हुआ। *

इसके बाद भोजकुमार अपने मामाके साथ कान्यकुब्ज चला गया। वहाँ राजमहलके दरवाजेपर एक माली फल बेच रहा था। उसने ताड़के तीन फल भोजकुमारको समर्पित किये। उन्हें लेकर वह सीधा राजभवनमें चला गया और वहाँ सिंहासनपर बैठे हुए अपने पिताकी छातीमें वे तीन

* यहाँपर ११ वर्षकी आयुमें बप्पभट्टिका आचार्य बन जाना असमव प्रतीत होता है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि अन्य बातोंमें कितना सत्य है।

फल मारकर उसने उसे मार डाला और स्वयं गद्दीपर बैठ गया। इसके पश्चात् वह आमविहार नामक तीर्थमें गया। वहाँ बप्पभट्टिके दो विद्वान् शिष्य थे। उन्होंने भोजका आदर-सत्कार नहीं किया, इससे भोज नाराज हो गया और उसने नन्नसूरि और गोविन्दसूरिको बुलवाकर उन्हें गुरुपद दे दिया। इसके बाद उसने अनेक राजाओंको जीत लिया और वह आम राजासे भी अधिक जिनशासनकी उन्नति करने लगा।

हेमचन्द्रसूरि

हेमचन्द्रसूरिका जन्म धंधुका शहरमें संवत् ११४५ में हुआ। ११५० में दीक्षा दी गई और अध्ययन पूरा होते ही संवत् ११६६ में जैन संघके आचार्य पदपर उनकी नियुक्ति की गई। तब वे खंभातसे पाटण जानेके लिए निकले।

उस समय पाटणमें सिद्धराज राज कर रहा था। वह कट्टर शैव था। (उसका बनाया सहस्रलिंग तालाब रेतसे भर गया था। उसे कुछ वर्ष पहले बड़ौदा सरकारके पुरातत्त्व विभागने खोज निकाला है।) हेमचन्द्रसूरि उस शहरके बाजारमेंसे जा रहे थे कि उधरसे सिद्धराज हाथीपर बैठकर अपने दलबल समेत आता दिखाई दिया। यह देखकर हेमचन्द्र पासकी एक दूकानमें खड़े हो गये और राजाके पास आनेपर उन्होंने राजाकी स्तुतिसे भरा हुआ एक श्लोक कह सुनाया। उसे सुनकर राजा प्रसन्न हुआ और हेमचन्द्रसे बोला, "आप हर रोज दो पहरको आकर मेरा मनोरंजन करते जाइए।" इसके बाद सिद्धराजने मालवा जीता और उस अवसरपर हेमचन्द्रसूरिने उसका स्तोत्र गाया।

एक बार अवंतीके भण्डारकी पुस्तकें राजा देख रहा था। उनमें उसे भोज व्याकरण मिला। तब वह हेमचन्द्र सूरिसे बोला, "हमारे देशमें भी ऐसा व्याकरण चाहिए। आप उसकी रचना करके मेरी

इच्छा पूरी कीजिए।" इसपर हेमचन्द्रसूरि बोले, "इससे पहले रचे गये आठ व्याकरण काश्मीर देशमें हैं। उन्हें देखनेके बाद ही नये व्याकरणकी रचना की जा सकेगी।" राजाने तुरन्त अपने नौकरोंको काश्मीर भेजकर वे व्याकरण मँगवा दिये और उनका अनुसरण करके हेमचन्द्र सूरिने 'सिद्ध-हेम' नामका व्याकरण लिखा। इस व्याकरणके प्रत्येक पादके अन्तमें एक एक श्लोक है। उन श्लोकोंमें मूलराज* और उसके वंशज राजाओंका वर्णन है। ३२ वें पादके अन्तमें चार श्लोक हैं। उनमें सिद्धराजकी प्रशंसा की गई है। इस व्याकरणको लिख लेनेके लिए राजाने ३०० लेखक जमा किये और उनसे उसकी प्रतियाँ करवाकर अंग, बंग, कलिंग, लाट, कर्णाटक, कोंकण, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, वत्सकच्छ, मालव, सिन्धु, सौवीर, नेपाल, पारसीक, मुरुंड, गंगाके उसपार हरद्वार, काशी, चेदि, गया, कुरुक्षेत्र, कान्यकुब्ज, गौड़, श्रीकामरूप, सपादलक्ष, जालंधर, खस, सिंहल, महाबोध, बोड़, कौशिक आदि देशोंमें उस व्याकरणका प्रसार किया।

एक बार चतुर्भुज नामके जैन मन्दिरमें हेमचन्द्रसूरिके शिष्य रामचन्द्र मुनि नेमिनाथके सम्बन्धमें भाषण दे रहे थे। उसमें पाण्डवोंकी दीक्षाका वर्णन आया। उसे सुनकर ब्राह्मण नाराज हुए और उन्होंने राजाके पास जाकर शिकायत की कि, "ये श्वेताम्बर जैन साधु बिल्कुल झूठ बोलते हैं। पाण्डव हिमालय पर्वतपर गये और वहाँ केदारनाथकी पूजा करके उन्होंने इहलोकको छोड़ दिया। ऐसा होते हुए भी ये शूद्र श्वेताम्बर पाण्डवोंद्वारा जैन धर्मकी दीक्षा लेकर शत्रुंजय पर्वतपर देह-विसर्जन किये जानेका झूठा क़िस्सा सुना रहे हैं। ऐसे असत्यवादियोंको उचित दण्ड मिलना चाहिए।"

* मूलराज सिद्धराजके घरानेका मूल पुरुष था।

सिद्धराजने हेमचन्द्रसूरिको बुलाकर इस मामलेमें पूछताछ की। हेमचन्द्र बोले, "हमारे ग्रंथोंमें वैसा लिखा है। परंतु ये पाण्डव महाभारतके नहीं हैं। कहते हैं कि भीष्मने युद्धके प्रारंभमें अपने परिवारके लोगोंसे कह रखा था कि उसके शरीरका दाह ऐसे स्थानपर किया जाय जहाँ किसीका भी दाहकर्म न हुआ हो। इसके अनुसार उसका शव एक निर्जन पहाड़ीपर ले जाया गया। वहाँ अचानक ऐसी आकाशवाणी हुई कि—

अत्र भीष्मशतं दग्धं पाण्डवानां शतत्रयम्।
द्रोणाचार्यसहस्रं तु कर्णसंख्या न विद्यते॥

[अर्थात् यहाँ सौ भीष्मों, तीन-सौ पाण्डवों, हज़ार द्रोणों और अनगिनत कर्णोंको जलाया गया है।]

ऐसे अनेक पाण्डवोंमेंसे जन पाण्डव भी होंगे; क्यों कि शत्रुंजय पर्वतपर उनकी मूर्तियाँ हैं।"

सिद्धराज बोला, "ये जैन मुनि जो कहते हैं वह सत्य है।" और हेमचन्द्रसूरिसे कहा, "आप लोग अपने आगमोंके अनुसार सत्य कथन करते हैं, उसमें कोई दोष नहीं है।"

इस प्रकार सिद्धराजसे सत्कृत हुए श्री हेमचन्द्र प्रभु जैनशासनरूपी आकाशमें सूर्यके समान प्रकाशमान् हुए। एक बार देवबोध नामक भागवतधर्मी आचार्य पाटण गया, तो सिद्धराज राजकवि श्रीपालके साथ उससे मिलने गया। उस समय देवबोधने वहाँपर एक श्लोक बनाकर श्रीपालका अपमान किया। तथापि राजाके कहनेसे श्रीपालने उसके साथ काव्य-चर्चा की। देवबोध आचार्यकी विद्वत्ता देखकर राजा प्रसन्न हुआ और उसे एक लाख द्रम्म (रुपये) इनाम दिए। श्रीपाल कविको राजाकी यह बात अच्छी नहीं लगी। उसने देवबोधकी चौकसी की

और जब देवबोध अपने परिवारके साथ सरस्वती नदीके किनारे शराब पी रहा था तब राजाको वहाँ ले जाकर यह दृश्य दिखा दिया। राजाने देवबोधको अपने राजमें रख लिया; परंतु पहलेकी तरहका उसका सम्मान नहीं रहा और उसपर भिक्षा माँगकर जीनेकी नौबत आ गई। तब अभिमान छोड़कर वह हेमचन्द्रसूरिके पास गया। हेमचन्द्रसूरिने उसे अपने आगे आसनपर बिठाकर उसका सम्मान किया, और सिद्धराजसे उसे और एक लाख द्रम्म दिलवाये।

सिद्धराजके लड़का नहीं था। अत उसने तीर्थक्षेत्रोंकी यात्रा की। उस यात्रामें उसने हेमचन्द्रसूरिको अपने साथ लिया। प्रभासपट्टणके शिवालयमें राजाके साथ शिवकी स्तुति करके हेमचन्द्रसूरिने भी शिवको नमस्कार किया; क्यों कि अविरोध ही मुक्तिका परम कारण है!

वहाँसे राजा कोटिनगर (कोडिनार) गया। उस अवसरपर हेमचन्द्र-सूरिने तीन दिन उपवास करके वहाँकी अंबिका देवीकी आराधना की। देवीने साक्षात् दर्शन देकर कहा, "हे मुनि, मेरी बात सुनो। इस राजाके भाग्यमें संतति नहीं है। इसके चचेरे भाईका बेटा कुमारपाल इसके बाद राजा बनेगा।"

जब यह बात सिद्धराजको बताई गई तो वह कुमारपालकी हत्या करनेकी सोचने लगा। कुमारपालको इसकी खबर मिल गई और यह जटाधारी शैव सन्यासी बनकर घूमने लगा। राजाके चार आदमियोंने उसका पता लगाया तो वह लगभग राजाके हाथमें आ ही गया था; परन्तु बड़ी चतुराईसे छूट गया और हेमचन्द्रसूरिके उपाश्रयमें पहुँचा। हेमचन्द्रसूरिने उसे ताड़पत्रोंमें छिपा दिया और राजपुरुषोंको उसका पता नहीं लगने दिया। इसके बाद कुमारपाल कापालिक कौल बनकर

सात बरसतक भटकता रहा। सवत् ११९९ में जब सिद्धराजकी मृत्यु हुई, तब कुमारपाल पाटण आया और अमात्योंने उसे राजसिंहासनपर बैठाया।

राजा बननेके बाद कुमारपालने अजमेरके अर्णोराजापर ११ बार आक्रमण किया, परतु उसमें उसे सफलता नहीं मिली। तब उसने अजितनाथ तीर्थंकरसे मन्नत मानकर अर्णो राजापर धावा बोल दिया और उसे जीत लिया। अपनी मन्नतके अनुसार कुमारपालने तारगाजीपर २४ हाथ ऊँचा अजितनाथका मदिर बनवाया और उसमें १०१ अगुल ऊँचाईकी अजितनाथकी मूर्तिकी प्रस्थापना की। हेमचन्द्रसूरिके उपदेशके अनुसार उसने और भी अनेक जैन मंदिर बनवाये।

सवत् १२२९ में ८४ बरसकी आयुमें हेमचन्द्रसूरिका देहान्त हुआ।

इन चरित्रोंका निष्कर्ष

उल्लिखित तीन जीवनचरित्र 'प्रभावकचरित्र' नामक ग्रथसे लिये गये हैं। यह सस्कृत मूलग्रथ प्रभाचन्द्रसूरिने विक्रम सवत् १३३४ में लिखा था। इसका गुजराती अनुवाद भावनगरकी जैन आत्मानद सभाने सवत् १९८७ में प्रकाशित किया था। पण्डित कल्याणविजय मुनिने इस ग्रथकी भूमिका लिखी है और 'प्रबन्धपर्यालोचन' नामक लेख उसमें जोड़ दिया है। उनके उस लेख और मूल ग्रथकी बातोंके आधारसे ऊपरके तीन चरित्र अत्यन्त सक्षेपमें दिये गये हैं। उनमें कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठक मुझे क्षमा करें।

गर्दभिल्ल राजाने कालकाचार्यकी बहनको जबर्दस्ती अपने जनानखानेमें रख लिया, यह बात निःसशय निन्दनीय थी, परतु उसका बदला लेनेके लिए शाही राजाओंको लाकर उनसे गर्दभिल्लकी हत्या करवाना जातिदेशकालसमयानवच्छिन्न सार्वभौम अहिंसामहाव्रतका

पालन करनेवाले सूरिके लिए उचित था, यह नहीं कहा जा सकता। उन्होंने संन्यासका त्याग करके यह काम किया होता तो शायद उसे क्षम्य कहा जा सकता था।

बप्पभट्टिकी जिन्दगी आमराजाके दरबारमें बीती। भिक्षुओंद्वारा राजाके साथ निकट सम्बन्ध रखे जानेका निषेध पालि साहित्यमें अनेक स्थानोंपर मिलता है और इस प्रकार राजाके साथ सम्बन्ध रखे जानेका एक भी उदाहरण नहीं पाया जाता। बौद्ध भिक्षु उपदेश देनेके लिए राजमहलोंमें जाते थे; परंतु अन्य बातोंमें वे बहुधा उदासीन रहते थे। राजाके साथ अतिपरिचय रखनेवाले भिक्षुओंका अन्य भिक्षु विशेष आदर नहीं करते थे। संभव है कि यह स्थिति महायान सम्प्रदायके समयमें बदल गई हो। परंतु अनेक सूरियोंके इन जीवन चरित्रोंपरसे यह स्पष्ट दिखाई देता है कि जैन सम्प्रदायमें राजाके साथ मित्रता रखना भूषणास्पद माना जाता था। आम राजाको जब किला नहीं मिल रहा था; तब उसे जीतनेका उपाय बप्पभट्टिने बताया। आम राजाका लड़का दुन्दुक अत्यंत दुर्गुणी था; फिर भी उसकी संगत छोड़नेको बप्पभट्टि तयार नहीं हुए। उनके सम्बन्धमें मुनि कल्याण-विजय अपने प्रबन्धपर्यालोचनमें कहते हैं।

"प्रबन्धमें आए अनेक प्रसंगोंपरसे ऐसा दिखाई देता है कि बप्पभट्टिका काल शिथिलाचारका था और बप्पभट्टि एवं उसके गुरुबन्धु प्रायः यानका प्रयोग करते थे। फिर भी उन्होंने राजाको अपनी ओर खींचकर जैन समाजपर जो उपकार किया वह सचमुच अनुमोदनीय है।" (पृष्ठ ६७)

राजाश्रयके कारण कुछ मंदिर और उपाश्रय बनाये गये; शायद इसीको कल्याणविजयजी उपकार कहते हैं।

सिद्धराज कट्टर शैव था, परन्तु वह विद्वानोंका सम्मान करता था। उसकी स्तुति करके हेमचन्द्रसूरि उसके मित्र बन गये और आठ व्याकरण उपलब्ध होते हुए भी केवल सिद्धराजके लिए नौवाँ व्याकरण उन्होंने लिखा और उसे 'सिद्ध-हैम' नाम दिया। राजाको खुश रखनेकी यह कैसी चेष्टा है! हेमचन्द्रसूरिके सहवासमें रहकर भी सिद्धराज कुमार पालकी हत्या करनेकी कोशिश कर रहा था और हेमचन्द्रसूरिने उसका निषेध नहीं किया और फिर भी वह प्रभावक बना *। सारांश, कालकाचार्यसे लेकर आजतक जैन समाजका यह मत रहा है कि राजाश्रयसे या धनवान् वर्गकी सहायतासे जो व्यक्ति जैन-मंदिर बनवाता है और उपाश्रयोंकी वृद्धि करता है वह श्रेष्ठ जैनाचार्य है।

परंतु क्या इन बातोंसे चातुर्याम धर्म अथवा पंच महाव्रतोंका विकास हुआ? काव्य, नाटक या पुराण लिखकर राजाओंका मनोरंजन तो ब्राह्मण भी करते थे, फिर उनमें और इन जैन आचार्योंमें क्या अन्तर रहा? ब्राह्मणोंके काव्य-नाटक-पुराणोंके सामने जैनोंके काव्य-नाटक पुराण फीके पड़ गये और लुप्तप्राय हो गये। इधर कुछ समयसे उन्हें प्रसिद्धि मिल रही है। परंतु यह संभव नहीं कि वे ब्राह्मणोंके ग्रंथोंसे आगे बढ़ जायेंगे। जैन धर्मको प्रश्रय देनेवाले राजाओंके चले जाते ही जैन मंदिरों और उपाश्रयोंकी शान भी चली गई। अतः इतनी दौड़-धूपसे जैन आचार्योंने क्या हासिल किया?

* प्रभावक शब्दकी व्याख्या श्रीकल्याणविजयजीने इस प्रकार की है:—जैन शास्त्रोंमें यह शब्द पारिभाषिक समझा जाता है। इसका अर्थ यह है कि अतिशय ज्ञान, उपदेशशक्ति, वादशक्ति या विद्या आदि गुणोंसे जो जैन आचार्य (जैन-शासनका) उत्कर्ष करता है वह प्रभावक है।

जैन उपासक

राजाओं द्वारा की जानेवाली हिंसा, असत्य, चोरी या लूट खसोट और परिग्रहका निषेध करना श्रमणोंके लिए असम्भव था। अतः उन्होंने अपने मंदिरों और उपाश्रयोंके लिए जितना कुछ मिल सकता था, प्राप्त करनेका सोचा होगा। परन्तु इससे वे स्वयं चातुर्याम धर्मका त्याग कर रहे थे, इसका भान उन्हें नहीं रहा। इसका कारण यह था कि वे पूर्णतया साम्प्रदायिक बन गये थे। अब संक्षेपमें इस बातका विचार हम करें कि अपने उपासकोंको खुश रखनेके लिए वे अपरिग्रहका अर्थ क्या लगाते थे।

जैन अंगोंमें उपासकदशा नामका एक अंग है। उसमें दस उपासकोंकी कथाएँ हैं। उनमेंसे पहली आनन्द उपासककी कथा इस प्रकार है —

आनन्द उपासक

आनन्द उपासक वाणिज्यग्राम नामके नगरमें रहता था। वहाँ जितशत्रु नामका राजा राज करता था। आनन्द गृहपतिके पास चार करोड सुवर्ण मुद्राएँ जमीनमें गाडी हुई, चार करोड व्यापारमें लगाई हुई, चार करोड अनाज, जानवर आदि (प्रविस्तर) में लगाई हुई थीं और दस-दस हजार गायोंके चार रेवड थे। उसकी स्त्री शिवनन्दा अत्यंत सुन्दरी थी।

वाणिज्यग्राम नगरसे बाहर कोल्लाक नामका सन्निवेश था। वहाँ आनन्द गृहपतिके अनेक आप्त मित्र रहते थे। उस सन्निवेशमें एक बार महावीर स्वामी गये तो जितशत्रु राजा उनके दर्शनोंके लिए पहुँचा। इसकी खबर मिलते ही आनन्द गृहपति भी वहाँ गया और उस सभामें

धर्मोपदेश सुनता रहा। उपदेश समाप्त होनेपर राजा और अन्य लोग अपने-अपने घर चले गये। परंतु आनन्द गृहपति वहीं रह गया और महावीर स्वामीसे बोला, "भगवन्, मै निर्ग्रन्थ-शासनमें श्रद्धा रखता हूँ और उस शासनका स्वीकार करता हूँ। परन्तु मै गृहस्थाश्रमका त्याग करनेमें असमर्थ हूँ। अत मै पाँच अणुव्रतो और सात शिक्षा व्रतोको मिलाकर वारह व्रतयुक्त गृहस्थधर्म ग्रहण करता हूँ।"

महावीर स्वामी बोले, "हे देवानुप्रिय, इस काममें विलम्ब मत करो।" तब आनन्द गृहपतिने महावीर स्वामीके पास स्थूल प्राणघातका प्रत्याख्यान किया कि, "मै आजीवन काया-वाचा-मनसे प्राणघात नहीं करूँगा और न करवाऊँगा।" असत्यका प्रत्याख्यान किया कि, "मै काया-वाचा-मनसे अस्त्याचरण नहीं करूँगा और न करवाऊँगा।" उसने स्वस्त्री व्रतोपव्रतको इस प्रकार स्वीकार किया कि, "एक शिवनन्दा भायाको छोड अन्य किसी भी स्त्रीके साथ मै समागम नहीं करूँगा।" इच्छाविधि (परिग्रह) के परिमाण व्रतको इस प्रकार स्वीकार किया कि, "चार करोड जमीनमें गाडी हुई, चार करोड व्यापारमें लगाई हुई, और चार करोड प्रविस्तरमें लगाई हुई सुवर्ण मुद्राओंके अलावा अन्य सभी सुवर्ण मुद्राओंका मै त्याग करता हूँ। मै इतनी ही खेती रखूँगा जिसमें पाँच सौ हल चल सके, अधिक नहीं रखूँगा। ४० हजार गायोंके अलावा अन्य गायोंका मे त्याग करता हूँ। चार बडे जहाजों और किश्तियोंको छोड और नौकाए मैं नहीं रखूँगा। पाँच सौ गाडियोंकी अपेक्षा अधिक गाडियाँ नहीं रखूँगा।" इसके बाद उसने उपभोग-परिभोगकी सीमा निर्धारित की। (अधिक विस्तारके भयसे वह प्रकरण यहाँ नहीं दिया जा रहा है।) फिर महावीर स्वामी आनन्दसे बोले, "जीवाजीव जाननेवाले श्रमणोपासकके सम्यक्त्वके ये पाँच अतिचार हैं:—(१)

नेशय रखना, (२) दूसरे सम्प्रदायकी इच्छा, (३) शंका निकाङ्क्षा, (४) अन्य संप्रदायकी ऐसी स्तुति करना कि सुननेवालोंको वह संप्रदाय पसंद आए, और (५) अन्य सांप्रदायिकोंसे मित्रता।" इसके बाद महावीर स्वामीने पाँच अणुव्रतों और सात शिक्षाव्रतोंके अतिचार* और अन्तमें मारणान्तिक सल्लेखनाव्रतके अतिचार बतलाए। जैन उपासकों, उपासिकाओं, साधुओं एवं साध्वियोंमेंसे कितने ही इस व्रतका पालन करते थे। व्याधि अथवा वृद्धावस्थासे शरीर जर्जरित होनेपर वे अनशन या प्रायोपवेशन करके प्राण-त्याग कर देते थे। आज भी कभी-कभी इस व्रतका आचरण किया जाता है। इस व्रतको 'अपश्चिम मारणान्तिकसल्लेखना जोषणाराधना' कहते हैं। इस व्रतके ये पाँच अतिचार हैं:—(१) इह लोककी आशा, (२) परलोककी आशा, (३) कुछ दिन जीनेकी आशा, और (४) मरणके पश्चात् कामोपभोगोंकी आशा।

पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत ग्रहण करनेके बाद आनन्द उपासक बोला, "भगवन्, आजसे राजाभियोग (राजाका कानून या हुक्म), गणाभियोग (जातिका नियम), बलाभियोग (बलप्रयोग), देवाभियोग (मन्नत-मनौती आदि), गुरुनिग्रह (गुरुद्वारा दी गई चेतावनी), उपजीविकाका भय और इनके अतिरिक्त अन्य तीर्थिक श्रमणों या अन्य देवताओंको नमस्कार करना मेरे लिए उचित नहीं है। तीर्थिकों द्वारा बुलाये बिना उनसे संभाषण करना उचित नहीं है; तथा उन्हें अन्न-पान, वस्त्र-पात्र आदि देना उचित नहीं है। परंतु ये पदार्थ मैं उचित रूपसे निर्ग्रंथोंको देता जाऊँगा। इतना कहकर आनन्द

* पाँच अणुव्रतोंके अतिचार ऊपर दिये हैं। सात शिक्षाव्रतोंके अतिचार विस्तारभयसे नहीं दिये गये। उन सातमेंसे पहले तीन व्रतोंको गुणव्रत कहते हैं। देखिए पृष्ठ ८ परकी टिप्पणी।

उपासक महावीर स्वामीको नमस्कार करके घर गया और उसने शिवनन्दाको भी इन व्रतोंके स्वीकार करनेका उपदेश दिया। उसके अनुसार शिवनन्दाने महावीर स्वामीके पास जाकर इन व्रतोंको पूर्ण किया।

व्रतोंको स्वीकार करके १४ वर्ष पूर्ण होनेपर आनन्द उपासकने अपनी सारी सम्पत्ति अपने बड़े लडकेको दे दी और स्वय घर छोड़कर पोषधशाला (धर्मसाधनशाला) में जा रहा। वहाँ व्रत नियमोंका पालन पूर्ण रूपसे करके उपासकत्वके बीस बरस पूरे होनेपर तीन दिन उपवास करके सल्लेखनाव्रतसे वह स्वर्ग सिधारा।

कामदेव उपासक

दूसरा उपासक कामदेव था जो चंपा नगरीमें रहता था। उसकी पत्नीका नाम भद्रा था। कामदेवके पास छ करोड़ सुवर्ण मुद्राएँ गाडी हुई, छ करोड व्यापारमे लगाई हुई और छह करोड प्रविस्तरमें लगाई हुई थीं, तथा ६० हजार गाएँ थीं। आनन्द उपासककी तरह उसने भी महावीर स्वामीसे गृहस्थधर्मका स्वीकार किया, और कुछ वर्षोंके पश्चात् अपने बडे बेटेके हवाले सारी सपत्ति करके वह पोषधशालामें जाकर रहा। वहाँ एक देवता प्रकट हुआ और उसने भयकर पिशाच वेश धारण करके कामदेवको व्रतसे च्युत करनेका प्रयत्न किया। परतु कामदेव निश्चल रहा। उस पिशाचने उसपर तलवारके वार किये, फिर भी वह विचलित नहीं हुआ। तब उस देवताने हस्तिवेश धारण करके अपनी सूँड़से कामदेवको आकाशमें फैंक दिया और दाँतोंपर लेकर पैरोंतले रौंद डाला। फिर भी कामदेव विचलित नहीं हुआ। तब उस देवताने बडे साँपका रूप ले लिया और कामदेवके गलेके इर्दगिर्द तीन लपेटे डालकर उसने उसकी छातीमें काटा, फिर भी कामदेव स्थिर रह गया।

तब उस देवताने अपना मूल रूप धारण किया और कहा, " इन्द्रका कहना था कि तुझे तेरे मनसे कोई डिगा नहीं सकेगा। उसकी बातका विश्वास न करके मैं यहाँ आ गया था। हे देवानुप्रिय, तू ऋद्धिमान् है। मैं तुझसे क्षमा माँगता हूँ। ' इतना कहकर वह कामदेवको प्रणाम करके चला गया। उपासकत्वके २० बरस पूरे होने पर कामदेव ३० दिन अनशन करके सल्लेखना मतसे स्वर्गलोक पहुँचा।

चुलणीपिता उपासक

तीसरा उपासक चुलणीपिता काशीका रहनेवाला था। उसके पास आठ करोड सुवर्णमुद्राएँ गाडी हुई, आठ करोड व्यापारमें लगाई हुई और आठ करोड प्रविस्तरमें लगाई हुई थीं तथा ८० हजार गाएँ थीं। बाकी सब आनन्द उपासककी तरह ही था। जब वह पोषधशालामें व्रताचरण कर रहा था तब एक देवताने उसके बडे लडकेको उसके सामने लाकर मार डाला और उसका मास एक कडाहेमें पकाकर उसके शरीरपर डाल दिया। पर चुलणी पिता स्थिर रहा। उस देवताने चुलणीपिताके दूसरे एव तीसरे लडकेको भी मारकर उनका मास उसी तरह उसपर फेका; और वह बोला, " हे चुलणीपिता, यदि तू व्रतका त्याग नहीं करेगा, तो मैं तेरे पुत्रोंकी तरह तेरी माँको भी तेरे सामने लाकर मार डालूँगा। " तब चुलणीपिताके मनमें यह विचार आया कि, " यह दुष्ट मेरी जननीको भी मेरे सामने मार डालना चाहता है, अत इसे पकडना अच्छा होगा। " यह सोचकर वह उठ खडा हुआ, परंतु वह देवता आकाशमें उड गया और चुलणी-पिताके हाथमें खभा आ गया। उसने जो घोर शब्द किया उसे सुनकर उसकी माँ भद्रा उसके पास गई और बोली, " हे पुत्र, क्या तू जोरसे चिल्लाया ? " चुलणीपिताने उसे सारी घटना कह सुनाई,

तब वह बोली, "तेरे पुत्र सकुशल हैं, पर तुझसे (उस देवताको पकड़नेकी इच्छा होनेसे) व्रत भग हुआ है। अत आलोचना करके दण्ड ग्रहण कर।" उसके अनुसार सब विधियाँ करके कामदेवकी तरह वह भी स्वर्गवासी हो गया।

सुरादेव उपासक

चौथा उपासक सुरादेव वाराणसीका रहनेवाला था। उसके पास छह करोड सुवर्ण मुद्राएँ गाडी हुई थीं और ६० हजार गाएँ थीं। चुलणी पिताके बच्चोंकी तरह ही एक देवताने उसके बडे लडकेको उसके सामने मार डाला और उसपर सोलह भयकर रोग डालनेका डर दिखाया। तब उसके मनमें भी चुलणीपिताके समान ही विचार आया और वह उस देवताको पकडनेके लिए दौडा। परतु वह देवता आकाशमें उड गया और इसके हाथमें खभा आ गया। उसके चिल्लानेसे उसकी पत्नी धन्या उसके पास गई और उसने उसे समझाकर व्रत-भगके लिए दण्ड (प्रायश्चित्त) ग्रहण करनेको कहा। उसके अनुसार सारे व्रतोंका आचरण करके सुरादेव भी अन्य उपासकोंकी तरह स्वर्गवासी हो गया।

चुल्लशतक उपासक

पाँचवाँ उपासक चुल्लशतक आलभिका नगरीमें रहता था। उसके पास कुल १८ करोड सुवर्ण मुद्राएँ और ६० हजार गाएँ थीं। बाकी सारी बातें आनन्द और कामदेवकी तरह ही थीं। केवल विशेष बातें हम यहाँ देते हैं। एक देवताने आकर उससे कहा कि, "तेरी सारी सम्पत्ति इधर-उधर फेंककर मैं उध्वस्त कर देता हूँ।" तब चुल्लशतकके मनमें चुलणीपिताके जैसा ही विचार आया और उस देवताको पकडनेके लिए वह दौडा। देवता छूट गया और चुल्लशतकके हाथमें खभा रह

गया। उसके चिल्लानेसे उसकी पत्नी बहुला वहाँ गई और उसने उसे सजग करके उससे प्रायश्चित्त करवाया। वह भी अन्य उपासकोंकी तरह स्वर्ग चला गया।

कुण्डकोलिक उपासक

छठा उपासक कुण्डकोलिक काम्पिल्यपुरका रहनेवाला था। उसकी पत्नीका नाम पुष्पा था। उसके पास कुल १८ करोड़ सुवर्णमुद्राएँ और ६० हज़ार गाएँ थीं। वह एक बार अशोकवन नामके उद्यानमें व्रताचरण कर रहा था। उस समय एक देवता आकर उससे बोला, "हे देवानुप्रिय, गोशाल मखलिपुत्रका धर्म उत्तम है। उसमें उत्थानबल, कर्म, पुरुष-पराक्रम नहीं है। भगवान् महावीर स्वामीका धर्म झूठा है।" कुण्ड-कोलिकने पूछा, "यदि उत्थान आदि नहीं है और भगवान् महावीर स्वामीका धर्म झूठा है, तो तूने ऋद्धि कैसे प्राप्त की?" देवताने कहा, "मैंने यह ऋद्धि उत्थान आदिके बिना ही प्राप्त की।" कुण्डकोलिक बोला, "यह तेरा कथन मिथ्या है।" यह सुनकर वह देवता निरुत्तर हुआ और चला गया।

यह बात महावीर स्वामीको मालूम हुई तो उन्होंने कुण्डकोलिकका अभिनन्दन किया। कुण्डकोलिक भी स्वर्ग चला गया।

शब्दालपुत्र उपासक

सातवाँ उपासक शब्दालपुत्र पोलासपुरमें रहनेवाला कुम्हार था। वह पहले आजीवक उपासक था। उसके पास कुल तीन करोड़ सोनेकी मुद्राएँ और दस हज़ार गाएँ थीं। उसकी पत्नीका नाम अग्निमित्रा था। उसके बर्तनोंके पाँच कारखाने थे जिनमें बहुतसे लोग काम करते थे। वह एक बार अशोकवन नामक उद्यानमें जाकर आजीवक मतके अनुसार व्रत पालन कर रहा था। उस समय एक देवता वहाँ जाकर उससे बोला,

" हे देवानुप्रिय, यहाँ कल एक दयावान् महापुरुष आनेवाला है। वह जिन है और त्रिलोकपूज्य है। अत तू उसे प्रणाम करके उसकी सेवा कर!"

शब्दालपुत्र बोला, " मेरा धर्माचार्य गोसाल मखलिपुत्र ही दयावान् जिन, और त्रिलोकपूज्य है। उसीको मै प्रणाम करूँगा और उसकी सेवा करूँगा।"

दूसरे दिन महावीर स्वामी उधर गये। उनके दर्शनोके लिए बहुत-से लोग गये। यह खबर सुनकर शब्दालपुत्र भी उनसे मिलने गया और उनकी प्रदक्षिणा एव प्रणाम करके उसने उसकी भक्ति की। तब महावीर स्वामीने उससे कहा कि, कल देवताने तुमसे जो कहा, वह गोशालके उद्देश्यसे बिल्कुल नहीं कहा था। यह सुनकर शब्दालपुत्रने महावीर स्वामीको अपने कारखानेमें रहनेके लिए निमन्त्रित किया। उसके अनुसार महावीर स्वामी वहाँ जाकर रहे। वहाँ मिट्टीके बर्तन सुखानेका काम चल रहा था। तब महावीर स्वामी शब्दालपुत्रसे बोले, "हे शब्दालपुत्र, क्या ये सारे बर्तन प्रयत्नके बिना तैयार हुए है?"

शब्दालपुत्र—ये प्रयत्नसे नहीं हुए है। जो कुछ होता है वह नियत ही होता है, उसके लिए प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं होती।

महावीर स्वामी—यदि कोई इन बर्तनोंको तोड डाले या अग्निमित्राके साथ सहवास करने लगे तो तुम क्या करोगे?

शब्दालपुत्र—मैं उसे शाप दूँगा, उसपर प्रहार करूँगा, उसे मार डालूँगा।

महावीर स्वामी—तो फिर तुम्हारा यह कहना मिथ्या है कि सब कुछ नियतिसे होता है।

यह सुनकर शब्दालपुत्रको सम्यक् ज्ञान प्राप्त हुआ और उसने महावीर स्वामीसे गृहस्थ-धर्मका स्वीकार किया। उसके कहनेसे अग्निमित्रा भी निर्ग्रंथ उपासिका बन गई। इसके बाद महावीर स्वामी वहाँसे अन्यत्र चले गये।

जब गोशालने यह वृत्तांत सुना कि शब्दालपुत्र महावीर स्वामीका उपासक हो गया है, तो वह अपने शिष्योंके साथ पोलासपुर गया। शब्दालपुत्रने उसको प्रणाम नहीं किया और न ही उसकी आव-भगत की; बल्कि महावीर स्वामीकी सविस्तार स्तुति करके* वह गोशालसे बोला, "क्या तुम मेरे धर्माचार्य (महावीर स्वामीके) साथ वाद-विवाद कर सकोगे?" गोशालने कहा, "नहीं। जैसे कोई जवान आदमी किसी बकरे या मेंढ़ेको मजबूतीसे पकड़ता है, वैसे भगवान् महावीर मुझे वाद-विवादमें पकड़ेंगे। इसलिए मैं उनके साथ विवाद करनेमें समर्थ नहीं हूँ।" इसपर शब्दालपुत्र बोला, "हे देवानुप्रिय, तुमने मेरे गुरुकी उचित स्तुति की है। अतः मैं तुम्हें रहनेके लिए स्थान दे देता हूँ।" इसके अनुसार गोशाल शब्दालपुत्रके कारखानेमें रह गया और उसने शब्दालपुत्रको फिरसे अपने संप्रदायमें लानेका बहुत प्रयत्न किया; परंतु वह सफल नहीं हुआ। अतः गोशाल वहाँसे चला गया।

इस प्रकार रहते हुए शब्दालपुत्रके चौदह वर्ष बीत गये, पंद्रहवें वर्षके मध्यमें एक देवताने आकर उसके सामने उसके तीन पुत्रोंको एक-के बाद एक करके मार डाला और उनका भुना हुआ मांस उसके शरीरपर डाल दिया। फिर वह देवता अग्निमित्राको मारनेके लिए तैयार

* मज्झिम निकायमें उपालीसुत्त है। उसमें उपालि निर्ग्रंथसम्प्रदाय छोड़कर बुद्धोपासक बनता है और महावीर स्वामीके घर जानेपर वह उसके साथ वैसा ही बर्ताव करता है एवं बुद्धकी स्तुति करता है। यह साम्य ध्यान देने लायक है।

हुआ, तो शब्दालपुत्र उसकी तरफ दौड़ा परंतु वह देवता आकाशमें उड़ गया और उसके हाथमें खंभा आ गया। उसका शोरगुल सुनकर अग्निमित्रा उसके पास गई और उसने उसे बच्चोंके सकुशल होनेका समाचार सुनाकर उसके कुविचारोंके लिए उससे प्रायश्चित्त करवाया। (यह और इसके आगेकी सारी कथा चुलणीपिताकी कथाके समान है।)

महाशतक उपासक

आठवाँ उपासक महाशतक राजगृह नगरका था। उसके पास कुल २४ करोड़ सुवर्ण मुद्राएँ और ८० हज़ार गाएँ थीं। उसकी तेरह स्त्रियोंमें रेवती प्रमुख थी। उसके पास आठ करोड़ सुवर्णमुद्राएँ और ८० हज़ार गाएँ थीं। शेष बारह पत्नियोंके पास एक-एक करोड़ सुवर्ण मुद्राएँ और दस-दस हज़ार गाएँ थीं। आनन्द उपासककी तरह महाशतक भी महावीर स्वामीका उपासक बन गया। उसने यह व्रत लिया कि, "मैं अपनी तेरह पत्नियोंको छोड़ अन्य किसी स्त्रीके साथ संग नहीं करूँगा और हर रोज केवल ६८ सेर सोनेका ही व्यवहार करूँगा।" अन्य सभी व्रत आनन्द उपासकके व्रतोंकी तरह ही समझे जायँ।

रेवतीने अपनी सौतोंमेंसे छहको शस्त्रप्रयोगसे और छहको विषप्रयोगसे मार डाला और उनकी सारी सम्पत्ति हड़प कर ली। फिर वह मनमाना मद्य-मांस-सेवन करने लगी। कुछ समयके बाद राजगृह नगरमें प्राणि-हत्या बंद कर दी गई; तब उसने अपने रेवड़मेंसे हर रोज़ दो गायोंके बछड़े (गोणपोयए) मारकर उनका मांस पकानेका हुक्म दे दिया। उसके अनुसार उसके नौकर उसे हर रोज़ दो बछड़ोंका मांस देते थे। उसे खाकर और शराब पीकर वह रहती थी।

उपासकत्वके १४ बरस पूरे होनेपर महाशतक अपने ज्येष्ठ पुत्रको सारी सम्पत्ति देकर पोषधशालामें जाकर रहा। उसे उपभोगोंसे और

खींचनेकी रेवतीने बहुत चेष्टा की; पर वह सफल नहीं हुई। फिर एक बार रेवतीने ऐसी ही चेष्टा की; तब महाशतक उससे बोला, "तू सातवें दिन रातको अलसक रोगसे मर जाएगी और नरकमें चली जाएगी।" उसे नाराज़ हुआ देखकर रेवती घर चली गई और सातवीं रातको मरकर नरक चली गई। यह समाचार महावीर स्वामीको मालूम हुआ तो उन्होंने अपने गोतम नामक शिष्यको भेजकर कटुवचन मुँहसे निकालनेके अपराधमें महाशतकसे प्रायश्चित्त करवाया। अन्तमें महाशतकने एक मासतक अनशन करके प्राण त्याग दिये और वह स्वर्ग गया।

नन्दिनी-पिता उपासक

नौवाँ उपासक श्रावस्ती नगरीका निवासी नन्दिनी-पिता नामक गृहपति था। उसके पास कुल १२ करोड़ सुवर्ण-मुद्राएँ और ४० हज़ार गाएँ थीं। उसकी पत्नीका नाम अश्विनी था। उसकी कथा लगभग आनन्द उपासककी कथाके ही समान है।

सालिही-पिता उपासक

दसवाँ उपासक श्रावस्ती नगरीका निवासी सालिही-पिता था। उसके पास कुल १२ करोड़ सुवर्ण-मुद्राएँ और ४० हज़ार गाएँ थीं। उसकी पत्नीका नाम फल्गुनी था। उसपर कोई संकट नहीं आया और कामदेवकी तरह ही सारा आचरण करके वह स्वर्ग गया। इन दसों उपासकोंने २० वर्ष तक श्रमणोपासना की।

श्रमणोंका आधार धनिकवर्ग

उल्लिखित कथाओंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि राजाओंके बाद धनिक महाजनोंको खुश करनेकी चेष्टा जैन साधुओंने कैसे की। अनाथपिण्डिक आदि बुद्ध-उपासक और विशाखा आदि उपासिकाएँ

मध्यवित्त श्रेणीकी थीं। उन्हें धनिक ठहरानेका प्रयत्न विनयपिटकमें किया गया है। उसीका अनुकरण इन कथाओंमें दिखाई देता है। यह सम्भव नहीं हो सकता कि महावीर स्वामीके जीवित-कालमें इतने धनी-लोग मौजूद हों। बेचारे शब्दालपुत्र (सद्दालपुत्त) कुम्हारको भी इन जैन साधुओंने करोड़पति बना दिया! सच पूछा जाय तो उस समय क्या जैन साधु, क्या बौद्ध भिक्षु, सभी कुम्हार, लुहार आदि श्रमजीवी वर्गके साथ ही अधिक सम्बन्ध रखते थे। मज्झिमनिकायके घटिकारसुत्तमें इसका वर्णन आता है कि काश्यप बुद्ध और घटिकार कुम्हारसे कितना घनिष्ठ परिचय था। घटिकार घरमें न हो तो भी काश्यप बुद्ध उसकी झोंपड़ीमें जाकर उसके बर्तनोंमेंसे अन्न लेकर भोजन करता था। गोतम बुद्धद्वारा परिनिर्वाणसे पहले चुन्द लुहारसे अन्नदान लिये जानेकी कथा तो सुप्रसिद्ध ही है। परंतु जैन साधुओंने तो सारे जैन उपासकोंको अत्यंत धनवानोंकी श्रेणीमें रख दिया। इसका अर्थ यह है कि साधारण जनताके साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा और धनिकोंके बिना अपना अस्तित्व कायम रखना जैन सम्प्रदायके लिए असम्भव हो गया था।

ईसाकी ११ वीं शताब्दीके लगभग बौद्ध भिक्षुओंकी स्थिति भी ममत्व ऐसी ही हो गई थी। सन् १०२६ में स्थिरपाल और वसन्तपाल नामक दो धनी बन्धुओंद्वारा सारनाथकी सारी बौद्ध इमारतोंकी मरम्मत किये जानेका उल्लेख एक शिलालेखमें मिलता है*। बुद्ध और महावीर स्वामीके जमानेमें श्रमणोंका सारा दारोमदार साधारण जनतापर था। सामान्य लोगोंसे ही उन्हें भिक्षा मिलती थी। अनाथपिण्डिक जैसा

* देखिए, "Guide to The Buddhist Ruins of Sarnath" by Rai Bahadur Daya Ram Sohani

कोई मध्यवित्त गृहस्थ या विशाखा जैसी उपासिका उनके लिए विहार अथवा उपाश्रय बनवाती और उनके निवासका प्रबन्ध करती। राजा उनका आदर करते और अपने राजमें रहनेकी स्वतन्त्रता उन्हे देते; परतु राजाओंके साथ ये श्रमण विशेष परिचय नहीं रखते थे। अशोकके बाद यह स्थिति बदल गई। राजाओं और अमीरोंके बिना विहार, उपाश्रय या मंदिर बनाना या चलाना असभव होता गया और इस वर्गको खुश रखनेके लिए श्रमणोंको चातुर्याम धर्मको तिलाजली देनी पडी।

राजा तो हिंसक ही होता था। अक्सर अपने भाई बन्दोको और कभी कभी तो अपने बापको ही मारकर वह गद्दीपर बैठता और फिर बार बार लडाइयाँ करके अपने राज्यकी रक्षा या विस्तार करता। जब वह इन श्रमणोंको आश्रय दे देता तब उसकी हिंसाके विरोधमें मुँहसे एक शब्द भी निकालना उनके लिए सभव नहीं होता था। उसे खुश रखनेके लिए ये श्रमण चाहे जैसी दन्तकथाएँ गढते, और इस प्रकार सत्यके याम अथवा महाव्रतको बिलकुल छोड देते। जिसने सत्यको त्याग दिया वह भला कौन-सा पाप नहीं करेगा? चूलराहुलोवाद सुत्तमें भगवान् बुद्ध राहुलसे कहते हैं—

"एवमेव खो राहुल यस्स कस्सचि सम्पजान मुसावादे नत्थि लज्जा, नाह तस्स किञ्चि पाप कम्म अकरणीय ति वदामि।" (अर्थात् इसी तरह हे राहुल, मै कहता हूँ कि जिस किसीको जान-बूझकर झूठ बोलनेमें लज्जा नहीं आती, उसके लिए कोई भी पाप अकर्तव्य नहीं है।)

जैनोंके पच महाव्रतोंमेंसे यह एक था। बड़े आश्चर्यकी बात है कि विलक्षण कल्पित कथाएँ रचनेवाले जैन साधुओंके ध्यानमें यह कैसे नहीं आया कि वे अपनी करतूतोंसे इस महाव्रतका भग कर रहे हैं?

अथवा इसमें आश्चर्य ही क्या है ? एक बार सम्प्रदाय बन गया, और उसका परिग्रह हो गया कि फिर उसकी रक्षाके लिए कोई भी पाप क्षम्य लगने लगता है। सब सम्प्रदायोंका यही इतिहास है।

प्रथमतः बौद्ध भिक्षुओंने ऐसी दन्तकथाएँ गढना शुरू किया और उन्हें लोकप्रिय होते देख जैन साधुओंने बौद्ध भिक्षुओंसे भी अधिक अतिशयोक्तिपूर्ण कथाएँ रचकर उन्हें मात कर दिया। तुम कहते हो कि दीपंकर बुद्धकी ऊँचाई ८० हाथ और आयु एक लाख वर्षकी थी; तो हम कहते हैं कि हमारे ऋषभदेवकी ऊँचाई दो हजार हाथ और आयु ८४ लक्षपूर्व अर्थात् ७० लाख ५६ हजार करोड़ वर्ष थी! फिर तुम्हारा दीपंकर बुद्ध श्रेष्ठ हुआ या हमारा ऋषभदेव ? कहिए! बौद्ध भिक्षुओंने ऊँचाई और आयुमें स्त्रियोंको भी जोड़ दिया है। कल्पित बुद्धकी बात जाने दीजिए, स्वयं गोतम बुद्धके बारेमें भी उन्होंने यह लिखा है कि गृहस्थाश्रममें उनके ४० हजार स्त्रियाँ थीं, उन्हें सम्भवतः इसका ध्यान नहीं रहा कि समूचे कपिलवस्तुकी भी जनसंख्या इतनी नहीं होगी। जैन साधुओंने स्त्रियोंको चक्रवर्तियोंके लिए सुरक्षित रख दिया। श्वेताम्बरोंके मतमें चक्रवर्तियोंके एक लाख बानवे हजार स्त्रियाँ होती थीं; पर दिगम्बरोंके मतमें वे केवल छियानवे हजार ही थीं[१]। शायद दिगम्बर जैन साधुओंको मात देनेका यह श्वेताम्बर साधुओंका प्रयत्न होगा। ऐसी इन गप्पोंमें चातुर्याम धर्म डूबकर लुप्त हो गया हो तो क्या आश्चर्य! इस धर्मको सुरक्षित रखनेके लिए जैन साधुओं और बौद्ध भिक्षुओंने प्राकृत एवं पालि भाषाओंका त्याग करके संस्कृत भाषाको अपनाया; और उसमें पुराणों, काव्यों और दर्शनोंकी

---

१ भारतीय संस्कृति और अहिंसा (वि० २।११६)। २ तिलोयपण्णत्ती, वि० ४।१३७२-७३।

रचना की। परंतु इतना करने पर भी उनके सम्प्रदायोंकी अभिवृद्धि नहीं हुई। क्योंकि जनसाधारणका समर्थन उन्हें नहीं रहा। जैन साधुओंने अपने संघमें भी जातिभेदको अपना लिया * अतः कुछ ऊँची जातियों—विशेषतः वैश्य जाति—की सहायतासे वह किसी तरह बचा रहा। बौद्ध भिक्षुओंने अन्त तक अपने संघमें जातिभेदको स्थान नहीं दिया। वैसा करना उनके लिए संभव भी नहीं था; क्योंकि बौद्ध धर्म ऐसे देशोंमें पहले ही फैल चुका था जहाँ जातिभेद नहीं था। तब यहाँ जातिभेदका जोर बढ़ जाने पर बौद्धोंको यह देश छोड़कर जाना पड़ा, यह उचित ही हुआ।

बप्पभट्टिके जन्मसे पहले ३१ वें वर्ष, अर्थात् सन् ७१२ ईसवीमें मुहम्मद बिन कासिमने सिन्ध देशपर कब्जा कर लिया; और तबसे मुसलमानोंका कदम इस देशमें आगे ही आगे बढ़ता गया। परंतु बप्पभट्टि जैसे लोग राजाश्रयमें मस्त हो रहे थे। सारे हिन्दू समाजपर आनेवाले इस संकटका विचार करनेकी फुरसत उन्हें कहाँसे होती? हेमचन्द्रसूरिका समय इससे भी अधिक तालावेलीका था। उनके जन्मसे पहले लगभग ४८ वें वर्षमें महमूद गज़नवीने सोमनाथका मन्दिर लूटा था। उसके हमलोंसे चारों ओर हाहाकार मच गया था। हेमचन्द्रसूरिके जमानेमें भी मुसलमानोंके आक्रमण बन्द नहीं हुए थे; पर हमारे सूरियोंको उनकी क्या परवाह थी? कुछ मन्दिर बनाये गये और कुछ ग्रन्थ लिखे गये; बस इतनेसे ही जैन-शासनकी विजय हो गई!

* भगवान् बुद्ध पृ० २५७-२५९।

धर्मकीर्तिके दो श्लोक

धर्मकीर्ति अपने प्रमाणवार्तिकमें कहते हैं :—

वेद:प्रामाण्यं कस्यचित्कर्तृवादः स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेपः ।
सन्तापारम्भः पापहानाय चेति ध्वस्तप्रज्ञानां पञ्चलिङ्गानि जाड्ये* ॥

[अर्थात् जिनकी प्रज्ञा ध्वस्त हुई है उनमेंसे कोई वेदप्रामाण्य, कोई जगत्कर्तृवाद, *कोई स्नानमें धर्मबुद्धि, कोई जातिका गर्व और कोई* पापक्षालनके लिए देहदण्डन ले बैठता है। उनकी जड़ताके ये पाँच चिह्न हैं ।]

ये पाँच बातें धर्मकीर्तिके समय अर्थात् ईसाकी सातवीं शताब्दीके प्रारम्भमें मौजूद थीं । उन सबमें जातिवाद विशेष प्रबल हो रहा था। पर उसे तोड़नेकी चेष्टा इन श्रमणोंने नहीं की ।

दूसरा एक श्लोक श्रीधरदासने सदुक्तिकर्णामृतमें धर्मकीर्तिका कहकर उद्धृत किया है।× वह इस प्रकार है :—

शैलैर्बन्धयति स्म वानरहृतैर्वाल्मीकिरम्भोनिधिं ।
व्यासः पार्थशरैस्तथापि न तयोरत्युक्तिरुद्भाव्यते ॥
वागर्थौ तु तुलाधृताविव तथाप्यस्मत्प्रबन्धानयं ।
लोको दूषयितुं प्रसारितमुखस्तुभ्यं प्रतिष्ठे नमः ॥

[अर्थात् वानरोंद्वारा लाये गये पर्वतोंसे वाल्मीकिने और अर्जुनके

---

* प्रमाणवार्तिक, राहुल सांकृत्यायनका संस्करण, The Journal of The Bihar and Orissa Research Society, Vol XXIV, 1938 Parts I, II.

× Punjab Sanskrit Book Depot (Lahore) संस्करण पृष्ठ १२० ।

बाणोंसे व्यासने समुद्रपर सेतु बनाया। फिर भी उनकी अतिशयोक्तिपर कोई टीका-टिप्पणी नहीं करता, परतु मेरे प्रबन्धकी, जिसमें शब्द और अर्थ मानो तौल-तौलकर रखे गये हैं, निन्दा करनेके लिए उनका मुँह सदैव खुला रहता है! हे प्रतिष्ठे, तुझे नमस्कार है!]

वाल्मीकि और व्यास चाहे जितनी अत्युक्तियाँ अथवा अतिशयोक्तियाँ करें तो भी उनके विरोधमें कोई एक शब्द भी नहीं निकालता था, क्यो कि राजे-रजवाडों तथा धनवानोंमें वे ऋषि समझे जाते थे और उनके विरुद्ध बोलनेसे विद्वानोंकी प्रतिष्ठा नष्ट होनेकी सभावना रहती थी। पर तरुण धर्मकीर्तिपर टीका टिप्पणी करनेसे प्रतिष्ठा बढती थी, "अरे, यह क्या वार्तिक लिखेगा! बेचारेने न्याय कब पढा, जो हो गया ग्रन्थकार!"—ऐसी टीका करनेसे पण्डितोंका सम्मान बढता था। इसीलिए धर्मकीर्ति कहता है कि, "ऐ प्रतिष्ठे, तुझे नमस्कार है! तू झूठको सच और सचको झूठ बनानेमें समर्थ है!"

ऐसी बाते सभी जमानोंमे होती है। राजभवनोंमें जिन बातोंकी प्रशसा होती थी उसे 'यथा राजा तथा प्रजा' के न्यायसे लोग मान लेते। मुसलमानोंके शासनकालमें जिस प्रकार पर्देकी प्रथा फैल गई, उसी प्रकार गुप्तोंके राजत्वकालमें रामायण और महाभारत काव्योंका प्रसार हुआ। पर उनका जोर प्रमाणवार्तिक जैसे जनसाधारणकी समझमें न आनेवाले ग्रथ लिखकर कम करना सभव नहीं था। बौद्धोंकी जातक जैसी कथाएँ यदि लोगोंको प्रिय हुई तो फिर ये काव्य क्यो न प्रिय होते? धर्मकीर्ति जिस महायान सम्प्रदायसे सम्बन्ध रखता था उस सम्प्रदायने तो हजारों बोधिसत्वों और देवी देवताओंकी कल्पना करके असत्यकथाओंमें काफी वृद्धि की! अत,

न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं।
अत्तनो व अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च ॥×

[अर्थात् औरोंकी त्रुटियों तथा औरोंके करने न करनेका विचार न करके अपने ही कार्य एवं अकार्यका विचार किया जाय ।]

—के न्यायसे धर्मकीर्तिको पहले अपने ही सम्प्रदायको सुधारनेकी चेष्टा करनी चाहिए थी । यह काम न्यायके उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखनेसे होना असम्भव था । प्रतिष्ठाका विचार दूर रखकर फिर एक बार, पार्श्वनाथ और बुद्धकी तरह सीधे साधारण जनताके पास जाकर उसे सत्यकी शिक्षा देनी चाहिए थी । निःसंशय यह काम संस्कृतमें न करके जनसाधारणकी भाषामें ही करना चाहिए था । पर क्या धर्मकीर्ति और क्या अन्य श्रमण-ब्राह्मण, सभी अपने अपने सम्प्रदायोंमें फँसे हुए थे । वे जनताके हितका प्रयत्न करते करते ?

ब्राह्मणोंका जातिवादाग्रेप इतना मोटा हो गया था कि उसमेंसे उन्हें लोकहित दिखाई देना असम्भव था । राजाको जो पसन्द आएँ वही बातें करके अपना और अपनी जातिका महत्त्व बरकरार रखनेमें ही वे अपनेको धन्य मानते थे । ऐसी स्थितिमें,

राजा विलुम्पते रट्ठं ब्राह्मणो च पुरोहितो ।
अत्तगुत्ता विहरथ जातं सरणतो भयं ॥

(अर्थात् राजा और ब्राह्मण पुरोहित राष्ट्रको लूट रहे हैं । अतः अब अपने ऊपर ही निर्भर रहो । जिसे तुम शरण (रूप) समझते हो उसीसे भय उत्पन्न हुआ है ।)

—इस प्रकार पदकुसल जातकके बोधिसत्त्वके समान लोगोंको

× धम्मपद, ५० ।

जाग्रत करनेवाला सत्पुरुष कैसे उत्पन्न होता? श्रमण और ब्राह्मण सभी राजाओंकी लूटमें शामिल थे और शेष जनता अज्ञानमें डूबी हुई थी फिर लोकोद्धार कौन करता? सारा समाज बिना गडरिएके भेडोंके रेवडकी तरह बिखर गया और मुसलमानोंके आक्रमणोंका शिकार हुआ।

बाइबिलकी दस परमेश्वरी आज्ञाएँ

अब श्रमण-ब्राह्मणोंको छोड़कर यह देखें कि बाइबिलमें चातुर्यामके सम्बन्धमें क्या जानकारी मिलती है। हमारे वर्तमान* शासकोंका यह पवित्र ग्रंथ है और उसका पश्चिमी संस्कृतिपर ही नहीं बल्कि इसलामपर भी बहुत असर पडा है। इस ग्रंथमें परमेश्वर मूसा (मोजेस) को दी गई १० आज्ञाओंका बहुत महत्त्व माना जाता है। तूर (सिनाई) पर्वतके शिखरपर परमेश्वर (यहोवा) मूसासे कहता है —

(१) मुझे छोड़ तुम अन्य देवताओंकी पूजा मत करो।

(२) किसी प्रकारकी मूर्ति अथवा प्रतिमा मत बनाओ, और उनकी पूजा मत करो।

(३) अपने परमेश्वरका नाम व्यर्थ मत लिया करो।

(४) विश्राम करनेके दिनको पवित्र रखो।

(५) माता पिताका मान करो।

(६) हत्या मत करो।

(७) व्यभिचार न करो।

(८) चोरी न करो।

(९) झूठा गवाही मत दो।

(१०) पराई चीजका लोभ मत रखो (Exodus निर्गमन २–१७)

* यह पुस्तक सन् १९४६ में लिखी गई थी।

इन दस आज्ञाओंमें पहली तीन परमेश्वरके सम्बन्धमें हैं। चौथी हर सातवें दिन छुट्टी मनानेके विषयमें और पाँचवीं माँ-बापका आदर करनेके सम्बन्धमें है। शेष पाँच आज्ञाओंमें कुछ अंशमें चार याम या पच महाव्रत आ जाते हैं। छठी आज्ञामें अहिंसा, सातवींमें गृहस्थ-ब्रह्मचर्य, आठवींमें अस्तेय, नौवींमें सत्य और दसवींमें अंशतः अपरिग्रह आता है। परंतु तौरेत (तोरत) या प्राचीन बाइबिलमें इन आज्ञाओंका कुछ और ही अर्थ समझा जाता था। निम्नलिखित विवेचनसे यह स्पष्ट हो जायगा।

मूसाका पूर्वचरित्र

याकूब (जेकब) का छोटा बेटा यूसुफ (जोसफ) जब सत्रह बरसका था तब उसके सौतेले भाइयोंने उसे जंगलमें ले जाकर बाँध रखा और मिस्र (इजिप्त) जानेवाले इस्माइली व्यापारियोंके हाथ बेच डाला। उन व्यापारियोंने उसे मिस्र (इजिप्त) के राजा फैरो (फिरऊन) के एक अधिकारीके हाथ बेच दिया। उस अफ़सरके मनमें उसके प्रति प्रेम पैदा हुआ; मगर उसकी पत्नीने यूसुफपर झूठा इल्ज़ाम लगाया जिससे उसे कैदखानेमें डाला गया। उसी जेलमें फैरो (Pharaoh) के नौकरोंका सरदार भी था। उसने एक सपना देखा। यूसुफने उस सपनेका अर्थ यह लगाया कि फैरो उस सरदारपर फिरसे खुश होगा। यह भविष्यद्वाणी सही साबित हुई और वह सरदार पुनः राजभवनमें काम करने लगा।

दो वर्षके बाद राजाने एक स्वप्न देखा कि वह नदीके किनारे खड़ा था, तब नदीमेंसे सात मोटी-ताज़ी गाएँ निकलीं और चरागाहमें चरने लगीं; इतनेमें उनके पीछे-पीछे सात दुबली गाएँ निकलीं और उन्होंने उन मोटी गायोंको खा डाला। यह सपना देखकर राजा जाग गया।

फिरसे सो जानेपर उसने दूसरा सपना देखा कि एक अनाजके पौधेमें एक साथ सात मोटी बालियाँ आईं और उनके पीछे-पीछे सात छोटी बालियोंने आकर उन मोटी बालियोंको खा डाला।

दूसरे दिन राजाने अपने ज्योतिषियोंसे इन सपनोंका अर्थ पूछा; पर वे न बता सके। तब उसके नौकरोंके सरदारको यूसुफ़का स्मरण हो आया और उसने राजाको सारा हाल कह सुनाया। राजाने तुरन्त यूसुफ़को बुलवा लिया और इन सपनोंका अर्थ पूछा। तब यूसुफ़ बोला, "इन सपनोंका अर्थ यही है कि सात बरस तक समृद्धि रहेगी और उसके बाद सात बरस तक अकाल पड़ेगा जो सुकालको खा जायगा। अतः अभीसे सावधान रहना चाहिए।"

राजाने समृद्धिके समयमें अनाज जमा करने और फिर अकालके दिनोंमें उसे बेचनेके लिए यूसुफ़को ही अधिकारी नियुक्त किया। उसका पिता और भाई कनआनमें रहते थे। वहाँ भी भयंकर अकाल पड़नेसे याकूबने अनाज लानेके लिए अपने लड़कोंको मिस्र भेजा। यूसुफ़ने उन्हें अपना परिचय दिये बिना बहुत-सा अनाज दिया और अनाजके पैसे भी उन्हींकी थैलियोंमें रख दिए। जब वे फिरसे अनाज खरीदने आए तो यूसुफ़ने उन्हें अपना परिचय दिया और अपने रिश्तेदारोंको मिस्र बुलवा लिया। फैरोने उन लोगोंको अच्छी ज़मीन इनाम दे दी और तबसे मिस्रमें यहूदियोंकी संख्या लगातार बढ़ती गई।

डेढ़ सौ बरस बाद अर्थात् ईसापूर्व १६ वीं सदीमें दूसरा एक फैरो गद्दीपर बैठा। यहूदियोंकी अभिवृद्धि उसे पसन्द नहीं आई और उसने उन्हें गुलाम बनाकर भारी काममें लगा दिया। फिर भी उनकी संख्या बढ़ती ही जा रही थी। तब उसने यहूदी दाइयोंको ऐसा हुक्म दे दिया कि

यदि किसी यहूदी स्त्रीके लड़का हो जाय तो उस बच्चेको तुरन्त मार डाला जाय। 'यहूदी जातिकी लेवी गोत्रकी एक स्त्रीके लड़का हुआ। उसे अधिक दिन छिपा रखना सम्भव नहीं था; अतः उसने एक पिटारे-पर चिकनी मिट्टी और राल लगाकर उस तीन मासके बच्चेको पिटारेमें बन्द कर दिया और पिटारा नदीके किनारे घासमें रख दिया। उस स्त्रीकी बेटी अपने भाईका हाल दूरसे देख रही थी। इतनेमें वहाँपर स्नानके लिए राजकन्या आई। उसने वह पिटारा देखा और उसे अपने नौकरोंसे खुलवाया। जब वह छोटा बच्चा रोने लगा तो उसे दया आई और वह बोली, "सम्भवतः यह कोई यहूदी बच्चा है।" उसकी बहनने राजकन्यासे पूछा, "क्या मैं इसके लिए एक दाई लाऊँ?"

राजकन्याने उस लड़कीको दाया लानेके लिए भेजा। तब वह लड़की अपनी माँको ही लेकर वहाँ जा पहुँची। राजकन्याने बालकको उसके हवाले कर दिया और कहा, "इसके लिए सारा खर्च मैं देती रहूँगी।" इस प्रकार वह लड़का अपनी माँके पास ही रहा। जब वह बड़ा हुआ तो उसकी माँने उसे राजकन्याको सौंप दिया। उसे पानीमेंसे बाहर निकाला गया था; इसलिए उसका नाम मूसा—मोज़ेस (उद्धृत) रखा गया और वह राजकन्याका बेटा बन गया।

अपनी माताके पास रहनेसे मूसाको यह मालूम हो गया था कि वह कौन है। बड़ा होने पर वह अपने जातवालोंके पास जाकर उनकी दुर्दशा देखता था। एक बार एक मिस्री आदमी एक यहूदीको पीट रहा था। यह देखकर मूसाको गुस्सा आया और उसने मिस्री आदमीको एकान्त स्थानमें ले जाकर मार डाला एवं रेतमें छिपा रखा। दूसरे दिन उसने देखा कि दो यहूदी आपसमें झगड़ रहे हैं। उनमेंसे एकके पास

जाकर मूसाने कहा, “ तुम अपने ही जातभाईको क्यों मारते हो ?” उसने पूछा, “ तुम मुझसे पूछनेवाले कौन होते हो ! तुमने उस मिसरी आदमीको मार डाला, वैसे ही क्या मुझे भी मारनेवाले हो ? ” मूसा जान गया कि उसकी कलई खुल गई है। जब फैरोको भी यह मालूम हो गया तो उसने मूसाको मार डालनेका इरादा किया। परन्तु मूसा वहाँसे भाग गया और मिद्यान प्रदेशमें जेथ्रो (चित्रो) नामक पुजारीके पास रह गया। पुजारीने अपनी लड़कीके साथ उसका ब्याह कर दिया और वह उस पुजारीकी भेड़ें चराकर अपना पेट भरने लगा।

ऐसी स्थितिमें मूसाको यहोवा (Jehovah) का साक्षात्कार हुआ और वह अपने भाइयोंको मुक्त करनेके लिए मिस्र चला गया। उस समय पहला राजा मर गया था और उसके स्थानपर दूसरा फैरो राज कर रहा था। मूसा अपने लेवी गोत्रके हारूनको साथ लेकर सीधा राजाके पास गया और उसने अपने यहूदी लोगोंको गुलामीसे मुक्त करनेके लिए कहा। परन्तु वह क्रूर राजा उन्हें छोड़नेको तैयार नहीं हुआ। तब यहोवाने मिस्री लोगोंपर अनेक आपत्तियाँ ढाईं। राजा डर गया और उसने यहूदियोंको अन्यत्र ले जानेकी इजाजत मूसाको दे दी। मूसा अपने लोगोंको लेकर कनआनकी तरफ़ जा रहा था कि फैरोने उन्हें पुनः पकड़ लानेके लिए सेना भेजी; परन्तु यहोवाने लाल-सागरको चीरकर यहूदियोंके लिए मार्ग बना दिया और जब उनके पीछे-पीछे शत्रुसेना वहाँ आ पहुँची तो समुद्रको मिलाकर उस सेनाको उसमें डुबो दिया। वहाँसे यात्रा करते करते मूसा और अन्य यहूदी लोग तर (सिनाई) पर्वतके पास गये। तब यहोवाने मूसाको पर्वतशिखरपर बुलाकर उल्लिखित दस आज्ञाएँ दीं। इसके बाद यहोवाने अनेक राज-

नैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक नियम बना दिये और अन्तमें अपनी उँगलियोंसे लिखी हुई दो तख्तियाँ दे दीं। (Exodus 31, 18)

उधर मूसा भगवान्‌के नियम सुन रहा था और इधर लोगोंने अपने सुवर्ण-कुण्डल हारूनके पास ला दिये। हारूनने उन्हें गलाकर एक गायका बछड़ा बना दिया और लोग उसकी पूजा करने लगे। (यह पूजा मिस्रमें चलती थी।) मूसा सिनाई पर्वतपरसे नीचे उतरा और यह सारा मामला देखकर क्रुद्ध हो गया। उसने अपने लेवी गोत्रके लोगोंको औरोंपर धावा बोलनेका हुक्म दिया। उसमें उन्होंने तीन हजार लोगोंको कत्ल कर दिया। (Exodus 32, 28)

यहोवा देवताका स्वभाव

यहोवा केवल यहूदियोंका देवता था, उसे अन्य लोगोंपर कोई दया नहीं आती थी। यहूदियोंको मिस्रमेंसे मुक्त करनेके लिए उसने जो अनेक सकट मिस्री लोगोंपर ढाए उनमें अन्तिम यह था कि उनकी और उनके जानवरोंकी प्रथम सतानें मार डाली गईं। तभी फैरोने यहूदियोंको चले जानेकी अनुमति दी। Exodus 12, 29) । उसने मूसाकी मारफत सब यहूदियोंसे कह रखा था कि मिस्री लोगोंसे जितना कुछ सोना, रूपा और जवाहरात मिल सकें, सब उधार ले रखें। (Exodus 11, 2)। उसके अनुसार वह सब लेकर यहूदी मिस्रसे निकले (Exodus 12, 35)। उसने जो नियम बनाये उनमें छोटे-छोटे अपराधोंके लिए भी मार डालनेकी सजा कही गई है। उदाहरणके लिए, जो कोई यहोवाका नाम व्यर्थ लेगा उसे सब लोग संगसार कर दें—पत्थर मारकर मार डालें। (Leviticus 24, 14) उसने मिदानके सभी पुरुषों और जिन्होंने पुरुषसंग किया था ऐसी स्त्रियोंको कत्ल कर डालनेका हुक्म दिया था। परतु यहूदी सरदारोंने

उन स्त्रियोंको जीवित रखा; इससे नाराज़ होकर यहूदी लोगोंमें ताऊन (प्लेग) फैला दिया गया। जब मूसाने स्त्रियोंको क़त्ल करवाया तब कहीं वह शान्त हुआ। (Numbers 31, 15)

एक बार कोरा, दाथान, अविराम, ओन और रूबेनके लड़कोंने मूसाके विरुद्ध शिकायत करना शुरू किया; तब यहोवाने पृथ्वीको चीरकर उसमें उन्हें गाड़ दिया और उनके साथके २५० लोगोंको जला डाला। (Numbers 16, 32, 35)

मूसाकी मृत्युके पश्चात् जोशुआ (यहोशू) यहूदियोंका नेता बन गया। उससे तो यहोवाने अत्यंत भयंकर काम करवाये। जोशुआने हज़ारों लोगोंको क़त्ल किया, अनेक शहरोंको साफ़ जला डाला, और कितने ही राजाओंको फाँसीपर लटका दिया। उसकी ये करतूतें पढ़नेपर कृष्णार्जुनद्वारा किये गये खांडववन-दहनका स्मरण हो आता है।

'हत्या मत करो' आदि आज्ञाओंका अर्थ

जब यहोवा स्वयं हत्या करता था और अपने भक्तोंसे करवाता था, तब 'हत्या मत करो'-इस आज्ञाका अर्थ क्या था? उसका अर्थ इतना ही था कि निरपराध यहूदियोंकी हत्या मत करो। 'तुम्हारे राजमें निरपराधका रक्तपात न होने पाये!' (Deuteronomy 19. 10) परंतु, 'तुम अपनी आँखोंमें करुणाको मत आने दो; पर प्राणके लिए प्राण, आँखके लिए आँख, दाँतके लिए दाँत, हाथके लिए हाथ और पाँवके लिए पाँव जाने दो।' (Deuteronomy 19, 21)* स्वयं यहोवाके लिए बलि चढ़ानी हो तो निरपराधकी हत्या करनेमें कोई हर्ज नहीं है। उदाहरणके लिए, जेफ़ाने अपनी इकलौती बेटीको यहोवाके लिए

*Also Exodus 21-23-24

कुरबान कर दिया। (Judges 11. 34-39) 'झूठी गवाही मत दो'– इसका अर्थ भी यही है कि यहूदीको दूसरे यहूदीके विरुद्ध झूठी गवाही नहीं देनी चाहिए। परंतु दूसरे राजमें गुप्तचरोंको भेजकर उस राजको हड़प लेनेमें कोई हर्ज नहीं है। जोशुआने जेरिको जीतते समय इस चालको अपनाया था। (Judges 2) 'चोरी मत करो'—का अर्थ भी यही था कि यहूदीकी चीज़को दूसरा यहूदी न चुराए। पर दूसरे राज्योंको ज़रूर लूटें। और लूटनेपर मिलनेवाली लूटका बँटवारा कैसे किया जाय, यह स्वयं यहोवाने ही बता दिया है (Numbers 31, 26-30) और उसमें कुछ हिस्सा यहोवाका भी है। 'व्यभिचार न करो' का अर्थ भी यही है कि एक यहूदी दूसरे यहूदीकी स्त्रीके साथ सम्बन्ध न रखे। पर अन्य देशोंकी जवान लड़कियोंको उनकी अनुमतिके बिना आपसमें बाँट लेनेके लिए यहोवाकी इजाज़त है। (Numbers 31, 18) सारांश, ये सारे नियम अथवा आज्ञाएँ यहूदी लोगोंके आपसी व्यवहारके लिए हैं। औरोंको मारना, लूटना, उनकी स्त्रियोंको भगाना आदि सभी बातें क्षम्य ही नहीं बल्कि कर्तव्य हैं। अतः बाइबिलकी इन आज्ञाओंका पार्श्वनाथके चार यामोंके साथ मेल बैठना संभव नहीं है।

मूसासे पहले और उसके समयमें जो छोटे-बड़े राज्य थे उनमें इस प्रकारके नियम थे ही। परंतु वे भगवानके दिये हुए नहीं, बल्कि राजा या बादशाहके बनाये होते थे। मूसाने स्वयं ही ऐसे नियम बनाये होते तो यहूदी उन्हें न मानते, इसलिए यहोवाके नामपर ही सारे नियम बनाये गये हैं, ऐसा लगता है।

यहोवा और दूसरे देवता

यहोवा और अन्य देवताओंमें मुख्य फर्क यह है कि वह अकेला ही है। उसे न पत्नी चाहिए न साथी। दूसरे यह कि, उसे अपनी मूर्तियाँ नहीं चाहिए। अन्य देवता उससे बर्दाश्त नहीं होते। वह कहता है, "दूसरे देशोंके लोगोंके साथ संधि मत करो --उनके पूजास्थानोंको तोड़ डालो और मूर्तियोंको फोड़ डालो—क्योंकि तुम्हें दूसरे देवताओंकी पूजा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि मैं मत्सरी (ईर्षालु) देवता हूँ; मेरा नाम मत्सरी है।" (Exodus 34, 12, 14) तीसरे यह कि, वह राष्ट्रीय देवता है। यहूदी राष्ट्रके लिए यहूदियोंकी भी हत्या करनेको वह तैयार रहता है। हमारे (भारतीय) देवता स्वयं या अवतार लेकर दैत्यों, दानवों, राक्षसों या मानवोंको अवश्य मारते हैं; पर वे केवल भूभार दूर करने या गो-ब्राह्मणोंके लिए वैसा करते हैं। अकेला परशुराम अवतार ही अपनी जातिके लिए पृथ्वीको निःक्षत्रिय करनेवाला निकला। परंतु उसने ब्राह्मणोंका राज कायम नहीं किया और उसके प्रयत्नोंके बाद भी क्षत्रिय तो रहे ही! यहोवाने कनानके सारे लोगोंका नाश करके वह प्रदेश यहूदी जातिको दे दिया और वहाँ उनका राज प्रस्थापित किया।

ईसा मसीहका यहोवा

यहूदी लोगोंपर अनेक संकट आये। उनमें सबसे बड़ा संकट यह था कि ईसासे पहले छठी शताब्दीके प्रारंभमें बेबिलोनका बादशाह नेबूकद नेज़ार उन्हें पकड़कर बेबिलोन ले गया। वहाँ वे ७० साल रहे। (Jeremiah 25, 11) ईसा मसीहके समयमें भी यहूदियोंकी हालत विशेष सन्तोषजनक नहीं थी। यद्यपि हेरोद नामका उनका राजा था,

तथापि उसके हाथमें सारी सत्ता नहीं थी। वह माडलिक था और उच्च अधिकार रोमन बादशाहके हाथमें थे। उस बादशाहका एक अधिकारी जरुशलेममें रहता था और प्रजाके विशेष हितोंकी देखभाल करता था। यहूदी लोगोंकी यह पक्की धारणा थी कि यहोवाकी पूजा विधिपूर्वक न करनेके कारण ही उनपर ये सकट आते हैं। उनकी यह दृढ़ श्रद्धा थी और अब भी है कि यहोवा उनके पापोंके लिए उन्हें क्षमा करके किसी मुक्तिदाता मसीहा (Messiah) को भेज देगा। ईसाई लोग मानते हैं कि यहोवाका भेजा हुआ मुक्तिदाता ईसा मसीह ही है, जो कि यहूदियोंको स्वीकार नहीं है।

ईसाके उपदेशमें गिरिप्रवचन श्रेष्ठ माना जाता है। उसमें ईसा कहता है, "तुमने पहलेके लोगोंका कथन सुना ही होगा कि 'तुम हत्या मत करो और जो हत्या करेगा वह न्यायदण्डके लिए पात्र होगा।' पर मैं कहता हूँ कि जो विना कारण अपने भाइयोंपर क्रोध करेगा वह न्यायदण्डका पात्र होगा और जो अपने भाइयोंको निकम्मा कहेगा वह महासभामें दण्डपात्र होगा। अत यदि तुम भगवान्‌के लिए भेंट लाओ और वहाँ तुम्हें अपने भाइयोंके विरोधका स्मरण हो आए तो भेंट वहीं रखकर पहले अपने भाइयोंको समझा दो और तब वह भेंट भगवान्‌को समर्पित कर दो .

"तुमने पहलेके लोगोंसे सुना है कि, 'तुम व्यभिचार मत करो।'— पर मै कहता हूँ कि जो कोई कामवासनासे स्त्रीकी ओर देखता है वह अपने हृदयमें ही उसके साथ व्यभिचार करता है

"तुमने सुना है कि, 'आँखके लिए आँख और दाँतके लिए दाँत,'*

* देखिए, ऊपर पृष्ठ ७१।

पर मैं कहता हूँ कि दुष्टताका प्रतिकार मत करो, बल्कि जो तुम्हारे दाहिने गालपर तमाचा मारे उसके सामने बायाँ गाल भी कर दो। और यदि कोई अदालतमें नालिश करके तुम्हारा कोट ले ले तो तुम उसे अपनी कमीज़ भी दे डालो ...

"तुमने सुना है कि, 'तुम अपने पड़ौसीसे प्रेम करो और शत्रुका द्वेष करो।' पर मैं कहता हूँ कि, 'तुम अपने शत्रुओंके साथ मित्रता करो, जो तुम्हें शाप देते हैं उन्हें तुम आशीर्वाद दो, जो तुम्हारा धिक्कार करते हैं तथा तुम्हें कष्ट देते हैं, उनके लिए तुम प्रार्थना करो। इससे तुम स्वर्गस्थ पिता (भगवान्) की सन्तान बनोगे, क्यो कि वह सूर्यसे अच्छे एवं बुरे दोनोंपर प्रकाश डलवाता है और अन्यायी एवं न्यायी दोनोंपर पानी बरसाता है अत स्वर्गस्थ पिताके समान तुम परिपूर्ण बनो।" (Matthew 5. 21–46)

अपरिग्रहके सम्बन्धमें ईसा कहता है, "कोई भी व्यक्ति दो स्वामियोंकी सेवा नहीं कर सकता, क्यो कि वह उनमेंसे एकपर प्रेम करेगा और दूसरेका द्वेष, अथवा एकका आदर और दूसरेका तिरस्कार। तुम परमेश्वर और सम्पत्तिकी सेवा नहीं कर सकोगे; अत मैं तुमसे कहता हूँ, जीवनकी चिन्ता मत करो कि तुम क्या खाओगे और क्या पियोगे, शरीरकी चिन्ता भी मत करो कि शरीरको कैसे आच्छादित किया जायगा। क्या अन्नकी अपेक्षा जीवन श्रेष्ठ नहीं है ? और क्या कपड़ेकी अपेक्षा शरीर श्रेष्ठ नहीं है ?"

इस उपदेशपरसे ऐसा दिखाई देता है कि ईसामसीहका देवता मूसाके यहोवासे बहुत ही भिन्न था। 'आँखके बदले आँख और दाँतके बदले दाँत' वाली यहोवाकी नीति ईसाके देवताको बिल्कुल पसन्द नहीं थी। वह सबका पिता है, हम औरोंको क्षमा करेंगे तो वह

हमें भी क्षमा करेगा। अर्थात् वह अत्यत न्यायी एव दयालु है। तथापि उसमें कुछ यहोवाका स्वभाव भी रह गया है। उसकी जो प्रार्थना ईसाने बताई है उसमें यह वाक्य भी है कि, 'और तुम हमें बुरे मार्गपर मत ले जाओ'।* फिर भी ईसाने और उसके शिष्योंने पश्चिमी देशोंमें बडी विचारक्रान्ति कर दी। पश्चिमके लोगोंको उन्होंने ही सबसे पहले यह शिक्षा दी कि वर्णभेद एव जातिभेदका खयाल न करके मनुष्योंको एक-दूसरेपर प्रेम करना चाहिए। शुरू शुरूमें तो ईसाई समाज अपरिग्रही होता था। कुछ सपत्ति होती तो उसे वे सार्वजनिक काममें लगाते। अत यह कहा जा सकता है कि पार्श्वनाथके चार यामोंको उन्होंने काफी हदतक अगीकार किया था।

ईसाका भगवान् यद्यपि दयालु और सारे मनुष्योंका पिता था, तथापि ईसाका यह निश्चित मत था कि भगवान् यहूदियोंपर विशेष कृपा रखता है। ईसा अपने प्रमुख बारह शिष्योंसे कहता है कि "तुम परदेशियोंकी ओर मत जाओ और सामारितन लोगोंके शहरमें प्रवेश मत करो, परतु यहूदियोंके रेवडमेंसे छूटे हुए व्यक्तियो (*The lost sheep of the house of Isreel*) के पास अवश्य जाओ।" (Mathhew 10 5 6) एक बार कनआनकी एक स्त्री ईसाके पास गई और पिशाचबाधासे पीडित अपनी बेटीको मुक्त करनेके लिए प्रार्थना करने लगी। तब ईसाने कहा कि, "मुझे यहूदियोंके गिरोहमेंसे छूटे हुए व्यक्तियोंके लिए भेजा गया है।" उसने फिरसे प्रार्थना की, तो ईसाने कहा, "बच्चोंकी रोटी लेकर कुत्तोंको खिलाना उचित नहीं है।" (Matthew 15, 22 26)

* Matthew 6. 13 and Luke 11-4.

सेंट पॉलका प्रचार

ईसाकी मृत्युके बाद उसके अनुयायियोको यत्रणाएँ देनेवाले यहूदियोंमें पॉल एक प्रमुख व्यक्ति था, जिसे यहूदी लोग सॉल कहते थे। दमस्कस के सीलाई नेताओको पकडकर यरूशलेमके प्रमुख धर्माधिकारीके पास भेजनेके हेतुसे वह जा रहा था कि दमास्कसके पास उसे अचानक देदीप्यमान् प्रकाश दिखाई दिया आर वह नीचे गिर गया। तब उसे यह आकाशवाणी सुनाई दी कि "सॉल, सॉल, तुम मुझे क्यों सताते हो?" पॉलने जब यह प्रश्न किया कि, "प्रभु, तुम कौन हो?" तब उसे उत्तर मिला कि, "मैं वही ईसा हूँ जिसे तुम सताते हो! " पॉल उठ खडा हुआ, परतु आँखें चौंधिया जानेसे उसे कुछ दिखाई नहीं दिया। साथके लोग हाथ पकडकर उसे शहरमें ले गये। तीन दिन तक उसे कुछ दिखाई न दिया और न अन्न खाया गया। अन्तमें अनानियास नामक ईसा भक्तने उसे ठीक कर दिया आर बपतिस्मा (दीक्षा) दिया। तबसे वह अत्यत उत्साही ईसाभक्त बन गया। वह भी पहले यहूदियोको ही धर्मोपदेश देता था, परतु वे सुनते नहीं थे और उसका विरोध करते थे, इतना ही नहीं बल्कि उसे मार डालनेका भी षडयत्र उन्होने रचा था। तब उसने विदेशियोको उपदेश देनेका निश्चय किया। एक स्थानपर वह यहूदियोसे कहता है कि, "मेरे लिए यह उचित था कि भगवान्का शब्द पहले तुम्हे सुनाऊँ, पर तुम उसका निषेध करते हो आर अपनेको अमृतत्वके लिए अयोग्य समझते हो। यह देखकर अब हम विदेशियोकी ओर जाते हैं।" (Acts 13–46)*

*Also Acts 18-6, 28-25-28

पॉलपर अनेक संकट आये, पर उसने ईसाई धर्मका प्रचार करनेका काम नहीं छोडा। एक बार उसे यरुशलेमके यहूदी लोग मार डालनेवाले थे, पर वहाँके रोमन कैप्टनने उसे बचा लिया और रात ही रातमें रोमन गवर्नरके पास भेज दिया। यहूदियोंने उसे अपने कब्जेमें लेनेकी कोशिश की, मगर पॉलने कहा कि "मै कैसरसे अपील करूँगा।" अत उसे जेलमें रखकर बादमें रोम भेजना पडा। उसे रोमन जेलमें बेडियाँ पहनाकर रखा गया था, फिर भी वह वहाँ धर्मप्रचार करता रहा। रोम पहुँचनेपर वह किरायेके मकानमें रहता था। वहाँ भी उसने बहुत धर्मप्रचार किया। इस प्रकार सेंट पॉलके प्रयत्नोंसे रोमन साम्राज्यमें ईसाई धर्म फैल गया।

कॉन्स्टटीन बादशाहका ईसाई धर्मको प्रश्रय

यद्यपि ईसाई धर्मका प्रचार लगातार चल रहा था, तथापि रोमन बादशाहोंकी तरफसे ईसाई लोगोंको बहुत यत्रणाएँ दी गईं। अन्तमें कॉन्स्टटीन बादशाहने इस धर्मको प्रश्रय दिया और तब ये यत्रणाएँ कम हुईं, ईसाई धर्म प्रबल बन गया। कॉन्स्टटीन बादशाहने सन् ३२९ में ईसाई आचार्योंकी एक धर्मसभा करवाई और उस सभामें ईसाई सघका सगठन किया गया। जिस प्रकार अशोकके आश्रयसे बौद्ध सघ परिग्रही बना, उसी प्रकार कॉन्स्टटीनके आश्रयसे ईसाई सघ भी परिग्रही बन गया और उसकी पार्थिव सपत्तिमें उन्नति और आध्यात्मिक सपत्तिमें अवनति होती गई। इससे ईसाका बताया हुआ अपरिग्रह दूर रहा, असत्य एव हिंसाका प्रादुर्भाव [हु]आ और राजाओंकी लूटमेंसे काफी हिस्सा ईसाई सघको मिलने लगा। अर्थात् पार्श्वनाथके चारों याम ईसाई सघमेंसे नष्ट होते गये।

इस्लामका प्रसार

इधर ईसाई संघकी उन्नति एवं आध्यात्मिक अवनति चल रही थी और उधर ईसाकी छठी शताब्दीके उत्तरार्धमें (सन् ५७० ईसवीके लगभग) अरब देशमें मुहम्मद पैगम्बरका जन्म हुआ। अरब लोग सैकड़ों देवताओंकी पूजा करते थे। बड़े होनेपर हज़रत मुहम्मद इस सम्बन्धमें सोचने लगे। यद्यपि वे पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे; तथापि आसपासके यहूदी पंडितोंसे उन्होंने बाइबिलका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और अपनी आयुके ४० वें वर्षसे वे ऐकेश्वरी धर्मका उपदेश देने लगे। प्रारंभमें उनकी पत्नी ख़दीजा और कुछ इने-गिने लोग उनके भक्त बने। पर धीरे-धीरे मक्कामें उनके मतका प्रसार होने लगा। तब वहाँके अधिकारियोंने उन्हें मार डालनेका षड्यंत्र रचा। मुहम्मद साहबको इसका पता लग गया और वे ५१ वरसकी उम्रमें ता० २० सितम्बर सन् ६२२ ईसवीको रात ही रात मदीना चले गये। उनके इस निर्गमनको हिजरत कहते हैं और उस दिनसे हिजरी संवत् माना जाता है।

मदीनामें मुहम्मद साहबको बहुत अनुयायी मिले और उनकी मददसे उन्होंने मक्काको जीत लिया। यह स्पष्ट है कि पार्श्वनाथ, बुद्ध या ईसाके अहिंसा-धर्ममें मुहम्मद साहबको बिलकुल श्रद्धा नहीं थी। वे यहूदी लोगोंके मूल देवता यहोवाकी ओर झुके। यहोवा और मुहम्मदके अल्लातालामें केवल इतना ही फ़र्क़ है कि यहोवा केवल यहूदियोंकी चिन्ता करता है, जब कि अल्ला उन सबकी फ़िकर रखता है जो इसलामको स्वीकार करते हैं। मुहम्मद साहब जात-पाँत नहीं मानते थे; और उनका शस्त्र-बल भी बढ़ता गया; इससे इस्लाम धर्म तुरन्त फैल गया।

मुहम्मद पैगम्बरकी मृत्यु ६२ वरसकी आयुमें हुई। उनके बाद अबू बकर गद्दीनशीन हुआ। सन् ६३४ में उसकी मृत्यु हो जानेपर

उमर गद्दीपर आया। सन् ६४३ में उसका देहान्त हुआ। इन दो खलीफाओंने इस्लामका बहुत प्रचार किया। इन दोनोका रहन-सहन बहुत सादा था। अत जनसाधारणपर उनका अच्छा प्रभाव पड़ा। उनके बाद जो खलीफा हुए वे बहुत विलासी थे, फिर भी उन्होंने इस्लामके प्रचारमें कोई कसर नहीं रखी।

तलवारके बलपर ईसाई धर्मका प्रचार

इस्लामकी छूत ईसाई धर्मको लगे बिना नहीं रही। जिस प्रकार खलीफा और मुसलमान बादशाह इस्लामका प्रचार तलवारके बलपर करते थे, उसी प्रकार ईसाई शासक भी शस्त्रबलपर अपने धर्मका प्रचार करने लगे। इसमें फ्रान्स एव जर्मनीके शार्लमेन बादशाहने नेतृत्व किया। (सन् ७७१–८१४ ईसवी) इस कार्यमें पोपका सपूर्ण आशीर्वाद था। बादमें स्वय पोपने धर्मयुद्धका नेतृत्व ले लिया। धर्म-युद्धको अरबी भाषामें जिहाद और लैटिन भाषामें क्रुजाद कहते हैं। अंग्रेज़ीमें उसे क्रुसेड (crusade) कहते हैं। पोपके नेतृत्वमें ईसवी सन् १०९७ से १२९० तक ईसाई राजाओंने मुसल्मानोंके साथ सात धर्मयुद्ध किये!

धर्मरक्षाके लिए एक इससे भी अधिक भयकर साधनका प्रयोग पोपने किया। ईसवी १३ वीं शताब्दीमें उस समयके पोपने इन्क्विजिशन (Inquisition) नामकी एक सस्थाकी स्थापना की। इस सस्थाके सदस्य पादरी ही होते थे और उनके दिये हुए निर्णयके विरुद्ध कोई अपील नहीं चल सकती थी। ईसाई धर्मके अर्थात् पोप और उसके पादरी-मडलके बनाये हुए नियमोंके विरुद्ध कोई जा रहे हैं, ऐसा शक आते ही उन्हें इन्क्विजिशनमें ले जाते और उन्हें या तो जिन्दा जला डालते

या गाड देते। यह संस्था १८ वीं सदी तक चल रही थी। पुराने गोवा शहरमें इस संस्थाकी जगह आजतक दिखाई जाती है और उस सस्थाकी याद आते ही आज भी लोगोंके रोंगटे खडे हो जाते है।

जिस धर्मगुरुने यह अत्यत अहिंसक उपदेश दिया कि 'तुम्हारे दाहिने गालपर कोई तमाचा जड दे तो तुम अपना बायाँ गाल भी उसके आगे कर दो।'—उसीके नामपर उसीके अनुयायियोंद्वारा की गई इन करतूतोंको पढने या सुननेपर हमारे मनमें मनुष्य-स्वभावके विषयमें एक प्रकारकी घृणा या निराशा पैदा हो जाती है।

राष्ट्रीयताका विकास

ऐसी करतूतोंसे पोप और पादरियोंके प्रति जनसाधारणकी आदरबुद्धि कम होना स्वाभाविक था। उसके साथ ही मध्यम वर्गके लोगोंमें ग्रीक और लैटिन भाषाओंका ज्ञान बढता गया। इससे लोग धर्मकी अपेक्षा राष्ट्रीयताकी ओर विशेष खिंचते गये और हर तरफ स्वदेशाभिमानका प्रसार होता गया। इसमें बाइबिलसे भी मदद मिल गई। तोरात या प्राचीन बाइबिलका यहोवा पूर्णतया साम्प्रदायिक देवता था, उसके स्थानपर राष्ट्रीयताके आनेमें देर नहीं लगी। ग्रीक लोगोंके कानून उनके शहरोंतक ही सीमित होते थे। फिर भी उनके इतिहास और दर्शन-शास्त्रने यूरोपीय राष्ट्रीयताम काफी मदद पहुँचाई। यह तो सभी जानते हैं कि आजकल यूरोपमें चलनेवाले कानून रोमन लोगोंके कानूनोंपरसे ही लिये गए हैं।

पर केवल राष्ट्रीयतासे आजीविका और ऐश-इशरतका सवाल हल नहीं हो सकता। अंत उपनिवेशोंके लिए सघर्ष शुरू हुआ। पहले स्पेन देश आगे चला और फिर इग्लैंड आगे बढा। इस राष्ट्रीयताका जन्म ही हिंसामेंसे हुआ और हिंसाके बलपर ही वह बढती गई। उसका सारा

इतिहास लिखनेका स्थान यह नहीं है। यहाँ केवल इतना ही कह देना पर्याप्त है कि आज सोवियत रूसको छोड़ शेष सारी दुनिया इस राष्ट्रीयताके चंगुलमें फँसी हुई है और उससे उत्तरोत्तर भयकर युद्ध हो रहे हैं।

राष्ट्रीयतापर सोवियतका इलाज

यह राष्ट्रीयता रूसमें विशेष प्रबल नहीं थी। यद्यपि रूसके ज़ार (बादशाह) रूसी जातिको महत्त्व देते थे, फिर भी अन्य जातियोंके प्रति उनमें विशेष तिरस्कार नहीं था। ख्यातनामा कवि पुश्किनका नाना हबशी (नीग्रो) था। वह तुर्कीके सुल्तानका गुलाम था। उसे भेंटके तौरपर सुल्तानने ज़ारको दे दिया था। ज़ार उसपर विशेष प्रसन्न हुआ और उसने उसे सरदार बनाकर एक दूसरे सरदारकी लड़कीके साथ उसका ब्याह करा दिया। यह बात इंग्लैंड या अमेरिकामें होना असभव है। पुश्किन उस नीग्रोकी लड़कीका बेटा था, पर उसे अपने नानापर कितना गर्व था! 'युगोनिई अनेगिन्' नामक काव्यके प्रारभमें ही वह अपने अफ्रीकी रक्तकी महत्ता बताता है। इस तरह यह देश राष्ट्रीयताकी सीमाओंको लाँघनेमें समर्थ हुआ, तो इसमें क्या आश्चर्य ?

राष्ट्रीयतासे लाभ उठानेवाला मध्यम वर्ग भी रूसमें प्रबल नहीं था, और जब ज़ारशाही नष्ट हुई तब सारे राष्ट्रोंको समानताके अधिकार देनेमें लेनिनको बिलकुल कष्ट नहीं हुआ। कावकाज, तुर्कोमन, उजबेक आदि सभी पिछड़े हुए देश रूसकी तरह ही आज पूर्ण स्वतंत्रताका अनुभव कर रहे हैं। रूसकी विजयके अनेक कारणोंमें यह प्रधान है।

सोवियतका इलाज अन्य देशोंके लिए संभव नहीं

इंग्लैंड, फ्रान्स, अमेरिका आदि देशोंमें देशाभिमान इतना मिट गया

है कि उनपर सोवियतका इलाज लागू होना असभव हो गया है। इतना ही नहीं वल्कि शस्त्रों और कूटनीतिसे इस इलाजका प्रतिकार करनेकी चेष्टा ये राष्ट्र लगातार किये जा रहे हैं। सोवियतकी सत्ता प्रस्थापित होते ही उसी तत्त्वपर इग्लैंडने अपने साम्राज्यका सगठन किया होता तो दूसरा महायुद्ध होता ही नहीं। पर वैसा करनेके लिए यह आवश्यक था कि इग्लैंडका मध्यवित्त वर्ग अपने स्वार्थको त्याग दे। अगर वह वैसा कर सकता तो,

> अवश्य यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया
> वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो य· स्वयममून्।
> व्रजन्त स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनस
> स्वय त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्त विदधते ॥

(अर्थात्, चिरकालतक उपभोग करनेपर भी विषयभोग (अतमें) निश्चय ही छोड जाते हैं। जो उनका त्याग नहीं करता और जो स्वय त्याग करता है, उनमें क्या भेद है? जब ये भोग आप ही आप चले जाते हैं तब भयकर परितापका कारण बनते हैं, जब कि स्वय उनका त्याग करनेपर वे अनन्त शान्तिसुख देते हैं।)—इस भर्तृहरिके कथनके अनुसार ससारमें अनन्त शान्तिसुखकी स्थापना की जा सकती।

दो शक्तियोंकी टक्कर

अब एक तरफ 'आपणासारिखे करिती तात्काळ' (अपने जैसा तुरन्त बनाते हैं) के सन्त-वचनका अनुसरण करनेवाले बोल्शेविकोंकी शक्ति और दूसरी तरफ ससारमें विषमताको बनाये रखनेकी चेष्टा करनेवाली ऐंग्लो-अमेरिकनोंकी शक्ति—इस तरह दो शक्तियोंकी टक्कर होनेकी सभावना है। यदि सचमुच यह टक्कर हो जाय तो अनन्त शान्तिसुखके बजाय अनन्त मानव-दुःख फैल जायगा। अमेरिका, इग्लैंड और रूसकी जो

राजनीतियाँ चल रही हैं वे इस टक्करको टालनेके लिए नहीं बल्कि इसीलिए हैं कि उससे और सब चकनाचूर हो जाय और वे स्वयं बच जायँ। इस टक्करमें केवल इन शक्तियोंका ही कचूमर नहीं निकलेगा, बल्कि हमारे जैसे अनेक असहाय देशोंके भी चकनाचूर हो जानेकी सभावना है। अत सभीका यह कर्तव्य है कि इस टक्करको टालनेका विचार अभीसे शुरू किया जाए। कहा जाएगा कि हम जैसे दुर्बलोंके सोच विचारसे क्या फायदा ? विचार तो स्वय अमेरिकनों, अग्रेजों और बोल्शेविकोंको करना चाहिए। मेरे मतमें इस मुठभेड़का होना या न होना बहुत कुछ हमपर भी निर्भर है। इस मामलेमें यदि हम तटस्थ रह सकें, तो इस टक्करका वेग बहुत कुछ कम हो जायगा और शायद उसे टाला भी जा सकेगा।

मुख्य इलाज चातुर्यामोंका

महात्मा गाँधीने पिछले २५ वर्षोंमें अहिंसा और सत्यके दो याम व्यवहार्य कर दिखाये हैं। उनको स्वीकार करनेसे हिन्दुस्तानका कोई नुकसान नहीं, बल्कि लाभ ही हुआ है। इन दो यामोंमें अस्तेय एव अपरिग्रहकी वृद्धि हो जाय तो हिन्दुस्तानका विकास अधिक अच्छा और त्वरित होगा। महात्मा गाँधी और उनके आश्रमवासी अनुयायी अपरिग्रह एव अस्तेय व्रतका पालन तो करते ही हैं, परतु सार्वजनिक कार्यके लिए उन्हे सपरिग्रही धनीवर्गपर निर्भर रहना पड़ता है। इस वर्गकी बहुतारा सपत्ति व्यापारी लूटके द्वारा (जिसे वे मुनाफा कहते हैं) प्राप्त की हुई होती है। अत उन्हें चारों याम पसन्द नहीं हैं। अपनी सपत्तिकी रक्षाके लिए वे वेझिझक हिंसाका प्रयोग करेंगे, और असत्य तो उनके व्यवसायका प्रमुख साधन है। ऐसा होते हुए भी राष्ट्रीय कार्यमें इस वर्गसे सहायता लेना महात्मा गाँधीके लिए आवश्यक हो

गया है। इसे हम आपद्धर्म कह सकते हैं। पर यदि यह ऐसा ही बढ़ता जाय तो सद्धर्मका सिंहासन दबोच बैठेगा, इसमें कोई शका नहीं है। अतः अभीसे इस वर्गसे सावधान रहना चाहिए।

इस वर्गके लोगोंसे हमें यह साफ़ कह देना चाहिए कि, "भाइयो, आप चातुर्यामका पूरा भंग करके संपत्ति कमाते हैं; फिर भी हम आपसे केवल इसीलिए दान लेते हैं कि इस देशके जनसाधारणका कल्याण हो और क्रान्तिकी नौबत आये बिना अहिंसाके द्वारा नये समाजका निर्माण किया जा सके। यह आशा रखना व्यर्थ है कि इस नव निर्माणमें इंग्लैंड-अमेरिकाके धनिकोंकी तरह आप भी सर्वाधिकारी बन बैठेंगे। आपकी हत्या किये बिना आपको आपके परिग्रहसे मुक्त करनेका हमारा प्रयत्न है और आपका कल्याण इसीमें है कि आप इसमें स्वेच्छासे सहयोग दें।" यह प्रचार अभीसे स्पष्ट रूपमें शुरू कर देना चाहिए।

राष्ट्रीयता नहीं चाहिए

इस प्रचारमें राष्ट्रीयताको नहीं मिलाना चाहिए। इस राष्ट्रीयतासे शुरू-शुरूमें इंग्लैंडको लाभ हुआ। पर उसके परिणाम पिछले दो महायुद्धोंमें जो निकले उनसे इंग्लैंडका तो लगभग दीवाला ही निकल गया है। और ऐसे चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं कि इंग्लैंड शीघ्र ही स्पेनका दर्जा हासिल कर लेगा। तो फिर इस राष्ट्रीयतासे इंग्लैंडने क्या पाया? अनन्त इतिहासमें 'दो दिनोंकी' साम्राज्यसत्ता!

हमारे लिए यह राष्ट्रीयता प्रारंभसे ही बाधक बनेगी। अंग्रेजोंसे मुकाबला करनेके लिए हम भले ही आज एक हो जायँ; मगर राष्ट्रीयताके कारण यह एकता शीघ्र ही नष्ट हो जायगी। कर्नाटक एवं महाराष्ट्र, आन्ध्र एवं तामिलनाड, बंगाल एवं बिहार तथा अन्य सभी प्रदेशोंमें छोटी-मोटी बातोंपर झगड़े होने लगेंगे और हिंसक तथा परिग्रही लोगोंके हाथमें सत्ता

चली जायगी। उससे जनसाधारणका बेहद नुकसान होगा। इस संकटको टालना हो तो आजसे ही इस राष्ट्रीयताके विरुद्ध आन्दोलन शुरू करना चाहिए। अपनी-अपनी भाषा एवं संस्कृतिका विकास सब लोग अवश्य करें, पर एक दूसरेके प्रति असहिष्णु न हों। राष्ट्रीयताका व्यसन बढा तो यह संघर्ष सहज ही पैदा किया जा सकेगा।

धार्मिक साम्प्रदायिकतासे खतरा

धार्मिक साम्प्रदायिकताके कड़ुवे फल आज हमें चखने पड़ रहे हैं। मुसल्मानोंके अज्ञान और उससे उत्पन्न संकीर्ण स्वार्थसे फायदा उठाकर अंग्रेजोंने उन्हें अन्य समाजसे विभक्त कर दिया और उनके दंगों फिसादों को प्रोत्साहन देकर अपनी सत्ताको बनाये रखनेका निंद्य प्रयत्न किया। इससे उन्होंने हिन्दुस्तानका और अपना भी दु:ख बढा लिया है। प्रथम महायुद्धके बाद सोवियत रूससे ठीक सबक सीखकर यदि अंग्रेजोंने सोवियतकी तरह ही अपने साम्राज्यमें सुधार कर लिये होते तो दूसरे महायुद्धकी नौबत ही न आती। मगर वैसा करनेके बजाय उन्होंने हर तरफ भेद-नीतिको ही अत्यंत प्रोत्साहन दिया। इस काममें उन्हें धार्मिक साम्प्रदायिकतासे अच्छी मदद मिली। उधर उन्होंने प्रोटेस्टंट आयर्लंड को कैथॉलिक आयर्लंडसे पृथक् कर दिया, अपने साम्राज्यके मार्गपर पैलेस्टाइनमें यहूदियोंको प्रोत्साहन देकर वहाँ अल्पसंख्यकोंकी एक अजीब राज्यपद्धति खडी की। हमारे यहाँ ब्रह्मदेश (बर्मा) को अलग कर दिया और हिन्दू मुसल्मानोंके झगडोंको और भडका दिया। परिणामस्वरूप दूसरा महायुद्ध छिड गया और अमेरिकाकी मिन्नतें करके अंग्रेजोंने अपना बेडा किसी तरह पार लगाया। परन्तु अभी तक उन्हें अपनी नीतिके लिए पश्चात्ताप नहीं हुआ। आज भी उनकी चालें चल रही हैं और ऐसे चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं कि उसमें इंग्लैंडका समूल नाश हुए बिना ये चालें बंद नहीं होंगी।

हिन्दुस्तानकी प्रगतिके मार्गमें अंग्रेज़ोंने मुस्लिम लीगकी बड़ी दीवार खड़ी की है और उसे वे तोड़ना नहीं चाहते। हिन्दू समाजने इस दीवारके बनानेमें काफ़ी मदद पहुँचाई है। सोवियत नेताओंकी तरह हमारे नेताओंमें भी जन-साधारणके प्रति आस्था होती और मार्क्सवादसे सबका हित कैसे हो सकता है इसकी जानकारी होती, तो प्रथम महायुद्धके बाद रूसके साथ हम भी मुक्त हो जाते। पर हमने तो अपने अहितका ही मार्ग अपनाया। जब अंग्रेज़ोंके चक्रमें मुसलमान आ गए तो हम भी आर्य-समाज, शिवाजी-उत्सव, गणेश-उत्सव, राजपूतोंकी शूरताकी कथाएँ, हिन्दू-विश्वविद्यालय आदि बातोंको सतत प्रोत्साहन देते गए; जिससे हिन्दुओं और मुसलमानोंका मनमुटाव और भी बढ़ता गया। अब तो हमें होशमें आकर इस धार्मिक साम्प्रदायिकताको हमेशाके लिए गाड़ देना चाहिए। हिन्दुओं और मुसलमानोंकी आर्थिक स्थिति समान ही है। 'मज़हब खतरेमें' का प्रचार धूर्त्त लोगोंने अपने स्वार्थ-साधनके लिए किया है। उनकी बातोंमें किसीको नहीं आना चाहिए।

कम्यूनिस्टोंका प्रचार

सामान्य जनताकी बुरी हालत सबको दिखलाकर श्रमिकोंका संघ-सामर्थ्य बढ़ानेका प्रयत्न कम्यूनिस्ट यानी साम्यवादी कर रहे हैं। उसके लिए उनको बधाई देना उचित होगा, परंतु कभी-कभी अपने साध्यके लिए वे गलत तरीक़ोंको अपनाते हैं और लोगोंके अनादरका भाजन बनते हैं। मुस्लिम लीगको मदद देनेका उनका प्रयत्न ऐसे ही मार्गोंमेंसे है। शायद वे समझते हैं कि कांग्रेस और मुस्लिम लीगके झगड़ेमेंसे साम्यवादी राज्यका निर्माण हो जायगा। पर यह संभव नहीं है। कांग्रेसमें चाहे जितने दोष

हों तो भी सामान्य जनताकी चिन्ता उसे है और लीग केवल अपने ही स्वार्थके पीछे पड़ी हुई है। इस संघर्षमेंसे साम्यवादी सत्ताका निर्माण होना संभव नहीं है। इससे विपरीत अंग्रेज़ोंकी सत्ता मज़बूत होती जा रही है। जब मुस्लिम श्रमिकोंके ध्यानमें यह बात आएगी तभी साम्यवादियोंको उनसे मदद मिलेगी। उनमें जातिभेदका झंझट कम होनेसे वे साम्यवादकी तरफ जल्दी झुकेंगे। मगर लीगकी मदद करनेसे उनकी फिरकापरस्ती बढ़ जायगी और वे साम्यवादसे दूर चले जाएँगे। अतः कम्यूनिस्टोंके हितमें यही अच्छा है कि वे ऐसे कुटिल मार्गपर न चलकर सीधे मार्गको ही अपनाएँ।

सोशलिस्टोंका प्रचार

कम्यूनिस्टों और सोशलिस्टोंके सिद्धान्त एक होते हुए भी उनमें घोर दुश्मनी है। सोशलिस्टों यानी समाजवादियोंका कहना है कि साम्यवादियोंके पास उनकी अपनी बुद्धि नहीं है, वे मॉस्कोके गुलाम हैं। और साम्यवादियोंको ऐसा लगता है कि अन्य देशोंके समाजवादियोंकी तरह ही भारतीय समाजवादी भी केवल नामके ही मार्क्सवादी हैं। दोनों क्रान्ति चाहते हैं, पर उनके मार्ग भिन्न हैं। दोनों कहते हैं कि जबतक लोग हिंसात्मक मार्गको नहीं अपनाएँगे तबतक क्रान्ति नहीं होगी।

मगर दोनों यह भूल जाते हैं कि रूसकी हालत और हमारे देशकी हालतमें बहुत अन्तर है। रूसमें किसानों और मज़दूरोंको अनिवार्य फौजी शिक्षा मिली थी। ऐसा होते हुए भी लड़ाईके मैदानमें ज़ारकी हार होनेतक साम्यवादियों और समाजवादियोंकी कुछ न चली। तबतक उनका प्रचार अहिंसात्मक ही था। वे लोगोंको संगठित बननेका उपदेश देते और मौका आनेपर

भारतीय सत्याग्रहियोंकी तरह जेलमें या निर्वासित होकर साइबेरियामें जाते। अर्थात् स्वयं कष्ट सहन करके वे लोगोंको शिक्षा देते। ज़ारकी हार होनेपर उन्हें मौका मिल गया और उससे लेनिनने फ़ायदा उठाया। इस तरहका फ़ायदा हमारे साम्यवादी और समाजवादी पहले या दूसरे महायुद्धके बाद नहीं उठा सके। क्योंकि अमेरिका या स्वयं रूसकी मददसे अंग्रेजोंकी जीत हुई थी। अब इन दोनोंको अगले महायुद्धकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। ऐसी मार्गप्रतीक्षा करनेके बजाय क्या यह उचित नहीं होगा कि सत्य एवं अहिंसाके उपायोंसे ही श्रमजीवी लोगोंको जाग्रत किया जाय ? सत्य तो उनके पक्षमें है ही, अब यदि वे शुद्ध भावनासे अहिंसाको अपनाएँगे तो हिन्दुस्तानका ही नहीं बल्कि सारे संसारका हित करनेमें समर्थ होंगे।

सोवियत संघको पूँजीपतियोंसे भय

सोवियत नेताओंको यह भय लगा हुआ है कि अमेरिकन और अंग्रेज पूँजीपति कोई न कोई बहाना बनाकर रूसपर हमला करना चाहते हैं और हम नहीं कह सकते कि यह भय बेबुनियाद है। इधर चीनमें चांग काइ शेकको आगे करके अमेरिकन लोग दाँव चला रहे हैं, तो हिन्दुस्तानमें मुस्लिम लीगका ठेंगुर कांग्रेसके गलेमें बाँधकर हिन्दुस्तानको सोवियतके खिलाफ़ खड़ा करनेकी चाल अंग्रेज चल रहे हैं, ऐसी शंका रूसी कूटनीतिज्ञोंको आ रही है। हिन्दुस्तानकी ओरसे सोवियत संघको निश्चित बनानेका प्रधान उपाय यह है कि अपरिग्रही एवं अस्तेयी समाजके निर्माणके ध्येयको कांग्रेस पूर्णतया अपनाए। श्री जवाहरलाल नेहरू और अन्य समाजवादी भाई कांग्रेसमें ही हैं; पर वे कट्टर देशाभिमानी हैं। इटली और जर्मनीमें यह अनुभव आया है कि देशाभिमान और सोशालिज्मके संयोगसे फ़ासिज़्म पैदा होता है।

वैसी हालत हिन्दुस्तानमें हो जाय तो निःसंशय हिन्दुस्तानकी तरफसे सोवियत संघको भय उत्पन्न होगा। परन्तु कांग्रेस यदि सर्वथैव अपरिग्रहका ध्येय स्वीकार करे, तो यह भय रखनेका सोवियत संघके लिए कोई कारण ही नहीं रहेगा।

आसपासके राष्ट्रोंपर हमला करके हमें अपने लिये उपनिवेश नहीं बनाने हैं। इतना ही नहीं बल्कि अपने ही देशमें हम ऐसे समाजका निर्माण करना चाहते हैं जिसमें कोई भी व्यक्ति परिग्रही या स्तेय (लूट) पर जीनेवाला नहीं होगा। परन्तु कोई ऐसा आग्रह न रखे कि यह समाज-निर्माण रूसी क्रान्तिकी तरह ही होना चाहिए। हमें विश्वास है कि सत्य और अहिंसाके मार्गसे यह किया जा सकेगा। हमारे सत्य अहिंसाके तत्त्व केवल स्वराज्य-प्राप्तिके लिए ही नहीं बल्कि सारे संसारका हित-साधन करनेके लिए हैं। जब सोवियत नेताओंको यह विश्वास हो जायगा कि हम उनपर आक्रमण नहीं करेंगे, इतना ही नहीं बल्कि यदि अंग्रेज और अमरीकी पूँजीपति सोवियतके साथ लड़ाई शुरू कर देंगे तो उसे बंद करनेके लिए हम अपनी तरफसे भरसक कोशिश करेंगे, तो वे हमारी ओरसे ही नहीं बल्कि कुछ हद तक अमेरिकन एवं अंग्रेज पूँजीपतियोंसे भी निश्चिन्त हो जायेंगे। कांग्रेस, सोशलिस्ट और कम्यूनिस्ट मिलकर इस नीतिको अपनाएँगे तो पूँजीपतियों और सोवियत संघकी टक्करमें हमारे देशके फँस जानेका डर नहीं रहेगा। और यदि हम चातुर्यामके द्वारा सात्त्विक बल प्राप्त करेंगे तो इस टक्करको बिल्कुल ही टाला जा सकेगा।

मुस्लिम लीगका क्या किया जाय ?

कांग्रेसियों, सोशलिस्टों और कम्युनिस्टोंमें जो त्यागवृत्ति है उसका लीगमें नितान्त अभाव है। 'मजहब खतरेमें' का शोर मचाकर वोट

(मत) प्राप्त करना और चुनाव होनेपर अपना स्वार्थ साधन करते रहना ही लीगी नेताओंका कार्यक्रम है। ऐसा होते हुए भी काग्रेस और कम्यूनिस्ट लीगी नेताओंकी खुशामद करते हैं; क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं है? इस मार्गसे स्वराज या साम्यवादी राजकी स्थापना करनेकी कल्पना नितात भ्रातिपूर्ण है। लीगियोंको न स्वराज्य चाहिए और न साम्यवाद ही। उन्हे तो केवल नौकरियाँ चाहिए और उनके लिए अग्रेज चाहिए। अग्रेजोंको यह अच्छी तरह मालूम है और लीगियोंकी ओटमें वे हमेशा अपना दाँव खेलते आये हैं। अत लीगको खुश करना किसीके भी बसकी बात नहीं है। लीगियो और अग्रेजोंको आपसमें गले मिलकर लोभके दलदलमें फँसने दिया जाय और इस समय तो उनकी उपेक्षा ही की जाय, यही उचित है। परंतु मुस्लिम जनताका जो बुद्धिभेद वे करते हैं, उसके लिए क्या किया जाय? इसमें शक नहीं कि जब काग्रेसी अपरिग्रह एव अस्तेयके ध्येयको पूर्णरूपसे अपनाएँगे तब गरीबीके मारे हिन्दू और मुसलमान सभी काग्रेसके पक्षमें आ जाएँगे। आजके लीगी नेता अग्रेजोंके पिट्ठू बने रहेंगे; परतु लोगोंपर उनका कोई असर नहीं रहेगा।

साराश, यह कि अन्तर्गत और अन्तर्राष्ट्रीय सभी गुत्थियाँ पार्श्वनाथके चार यामोंके द्वारा सुलझाई जा सकती हैं, केवल श्रद्धा चाहिए और फिर समय समयपर उनके प्रयोग करनेके लिए प्रज्ञा चाहिए।

चातुर्यामकी शिक्षा

चातुर्यामके द्वारा जगत्का कल्याण करना हो तो उसकी शिक्षा सार्वत्रिक होनी चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि जैन या बौद्ध साधुओंको पाठशालाओंमें भेजकर उनसे चातुर्याम अथवा अष्टागिक मार्गकी शिक्षा दिलवाई जाय। अगर ऐसा किया गया तो ये साधु

अपने झगड़े स्कूलोंमें ही शुरू कर देंगे और उससे चातुर्यामके बजाय हिंसाका ही प्रसार होगा।

तो फिर चातुर्यामकी शिक्षा कैसे दी जाय ? आज जैसे पदार्थविज्ञान अथवा मनोविज्ञानकी शिक्षा दी जाती है वैसे ही यह शिक्षा दी जानी चाहिए। चातुर्यामके प्रयोग प्रथमतः पार्श्वनाथने किये। वे कहाँतक सफल हुए और बादमें उनके विपर्यास होनेके क्या क्या कारण हुए, आदि सब बातें अध्यापक अपने विद्यार्थियोंको सिखाएँ। भगवान् बुद्धने अपने अष्टांगिक मार्गके द्वारा इस चातुर्यामका अच्छा विकास किया। राजकीय सत्ता निरंकुश और हिंसात्मक होनेसे बुद्धके प्रयोग भी निष्फल हुए। उसके बाद ईसा मसीहने इन यामोंके प्रयोग किये। परंतु यहोवाका मिश्रण हो जानेसे उनसे लाभकी अपेक्षा हानि ही अधिक हुई। महात्मा टाल्स्टायने अपने लेखों द्वारा यह साबित किया कि यदि इन यामोंमें मनुष्योपयोगी शरीर-श्रम जोड़ दिये जायँ तो ये स्थायी बन जाएँगे। परंतु उनके लिए प्रत्यक्ष प्रयोग करके दिखाना संभव नहीं हुआ। दूसरी बात यह है कि उन्होंने यहोवाको नहीं छोड़ा और अपने तत्त्वज्ञानको इंजील (नई बाईबिल) पर स्थापित करनेकी कोशिश की। परंतु आज यूरपके शिक्षित लोगोंकी बाइबिल या ईश्वरपर श्रद्धा नहीं रही है। अतः टाल्स्टायका तत्त्वज्ञान भी लोगोंको नहीं जँचता। महात्मा गाँधीने यह प्रत्यक्ष सिद्ध करके दिखाया कि अहिंसा और सत्यके आधारपर एक बड़ा आन्दोलन किया जा सकता है। परन्तु ये याम अभी प्रयोगावस्थामें हैं। स्वयं गाँधीजी ही उन्हें सत्य और अहिंसाके प्रयोग कहते हैं।

इन प्रयोगोंमें खतरा

ये प्रयोग सांप्रदायिक नहीं होने चाहिए। इनका गुण गाना चाहिए, भगवद्गीताका पारायण करना चाहिए, सुबह-शाम भजन करना

चाहिए, आदि बातोंके साथ इन प्रयोगोंको मिला दिया जाय, तो ये सत्य और अहिंसाके प्रयोग न रहकर एक सम्प्रदाय बन जाएँगे और उससे लाभकी अपेक्षा हानि ही अधिक होगी।

दूसरी बात यह है कि इन प्रयोगोंको परमेश्वर और आत्मासे दूर रखना चाहिए। वैज्ञानिक इसकी खोज अवश्य करें कि परमेश्वर अथवा आत्मा है या नहीं। ईश्वरके विषयमें वैज्ञानिक कुछ भी नहीं बता सकते। अर्थात् वे इस सम्बन्धमें अज्ञेयवादी या प्रत्यक्षवादी हैं। आत्माके विषयमें जो अनुसन्धान चल रहा है उसमें बौद्धोंका यह सिद्धान्त ही सही माना जाता है कि, 'आत्मा अत्यत अस्थिर अथवा अनित्य है।' जैसी विद्युत् शक्ति होती है, वैसी ही आत्मशक्ति है। उसका उपयोग अच्छे और बुरे दोनों कामोंमें किया जा सकता है। यह आत्मशक्ति जैसे चगेजखान, तैमूरलग, महमूद गजनवी आदिमें थी वैसे ही पार्श्वनाथ, महावीर, बुद्ध, ईसा आदिमें भी थी। अतर केवल इतना ही है कि पहले लोगोंने उस शक्तिका उपयोग मानवोंके सहारके लिए किया और दूसरे लोगोंने मनुष्यके विकासके लिए।

आजकल विज्ञानका जो विकास हुआ है वह परमेश्वरपर भरोसा रखनेसे नहीं हुआ है, बल्कि वैज्ञानिकोको कई बार ईश्वर भक्तोंसे लडकर ही अपने आविष्कारोंपर अमल करना पडा है। अत चातुर्यामोंके प्रयोगमें परमेश्वरकी कल्पनाको जोड देनेसे सम्प्रदायके सिवाय और कुछ नहीं निकलेगा।

अहिंसा

इधर अहिंसाका यह अर्थ हो गया है कि एक तरफ लोगोंको बुरी तरह चूसकर पैसा कमाया जाय और दूसरी तरफ एक पिंजरापोल खोला जाय, अथवा यह सभव न हो तो कुत्तों और बन्दरोंको घी-रोटी

खिलाई जाय और चींटियोंको चीनी खिलाई जाय। गाँधीजी जब कहते हैं कि मछलियाँ पकड़कर गरीबोंके भोजनमें वृद्धि की जाय, तब इन लोगोंको गाँधीजी बिलकुल दाम्भिक मालूम होते हैं। यदि कोई कहे कि एक समय जैन भिक्षु मांसाशन करते थे तो ये सज्जन उसे जेल भिजवानेको तैयार हो जाते हैं। यह है आजकलकी अहिंसा!

परन्तु पार्श्वनाथ या बुद्धने ऐसी अहिंसाको बिलकुल महत्त्व नहीं दिया था। मनुष्यके द्वारा मनुष्यकी जो हिंसा होती है, उसे नष्ट करनेका प्रयत्न उन्होंने किया। अर्थात् उनकी अहिंसा प्रथमत मनुष्यके लिए लागू थी। अगर वैसा न होता तो उन्होंने यज्ञ-यागोंके साथ ही खेतीका भी निषेध किया होता। क्योंकि खेतीमें प्राणियोंकी जितनी हिंसा होती है उतनी यज्ञोंमें नहीं हो सकती। जैन साधुओंने तो इससे भी आगे जाकर रसोई न पकानेका उपदेश दिया होता, क्योंकि रसोईमें वनस्पति-काय और अन्य कार्योंकी कितनी असीम हत्या होती है! अहिंसामें सत्य, अस्तेय एव अपरिग्रहके तीन याम जोड़ दिये जानेसे यह सिद्ध होता है कि यह अहिंसा मानव-समाजके लिए थी। व्यवहारमें लोगोंको लूटकर चींटियोंको शक्कर खिलानेके लिए वह अहिंसा नहीं थी। जैन और बौद्ध धर्म जब राजाश्रित हुए तब उस अहिंसाका यह विपर्यास हुआ। उसे इस साम्प्रदायिकताके चंगुलसे छुड़ाकर पुन कार्यक्षम बनाना ही अहिंसाका सच्चा प्रयोग है।

सत्य

सत्यके प्रयोगमें हठधर्मी या दुराग्रह नहीं होना चाहिए। पोपका यह निश्चित मत था कि पृथ्वी नहीं घूमती है, इसलिए उसने गैलीलिओको बेहद यत्रणाएँ दीं। 'इद सच्च मोघमण्ण' (यही सत्य है और बाकी सब झूठ है) के आग्रहसे ही दुनियामें अनेक लड़ाइयाँ छिड़ी हैं। परन्तु

अब भी मनुष्य इस आग्रहको छोड़नेके लिए तैयार नहीं है। हमारी डेमॉक्रसी (जनतंत्र) ही सत्य है और तुम्हारा कम्यूनिज्म (साम्यवाद) असत्य है, इस हठधर्मीसे ही आज और एक महायुद्ध छिड़ना चाहता है। ऐसी स्थितिमें सत्यका विचार अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रहके यामोंके अनुसार किया जाना चाहिए। हम अपने जिस जनतंत्रको सत्य मानते हैं, वह क्या इन तीन यामोंपर अधिष्ठित है ? यदि उसकी रक्षाके लिए हमें परमाणु बमका प्रयोग करना पड़े, तो वह अहिंसापर अधिष्ठित नहीं होगा। अगर उसके लिए पिछड़े हुए लोगोंकी स्वतंत्रता छीननी पड़ती है और उन्हें व्यापारके द्वारा चूसना पड़ता है तो वह अस्तेयपर आधारित नहीं है, उसके लिए सारी दुनियाका सुवर्ण जमा करना पड़ता हो तो वह अपरिग्रहपर अधिष्ठित नहीं है। अतः ऐसे जनतंत्रके लिए युद्ध करना निरी मूर्खता है। क्रुसेड (जिहाद) जैसे धर्मयुद्ध केवल अज्ञानके कारण हुए; उनमें सत्यका लवलेश भी नहीं था। उसी तरह हमारी डेमॉक्रसीमें भी वह नहीं है। यह बात यदि अमेरिकन और अंग्रेज लोग समझ लें तो आज जो युद्धकी तैयारी चल रही है वह तुरन्त बन्द हो जायगी।

पदार्थविज्ञानमें जो नये नये आविष्कार हो रहे हैं, वे सत्य अवश्य हैं; पर यदि वे अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रहके यामोंको खत्म करनेवाले हों तो उनसे लाभ होनेके बजाय दुःख ही बढ़ेगा। वैज्ञानिकोंने अलग-अलग बम खोज निकाले; उनमें अन्तिम आविष्कार परमाणु बमका है। अमेरिकन लोग उसका उपयोग अपने परिग्रहको बढ़ानेके लिए करना चाहते हैं। वे कहते हैं, "देखो, हमारे हाथमें यह अद्भुत शक्ति है। अतः तुम चुपचाप हमारे परिग्रहको स्वीकृति दे दो और उसे बरकरार रखनेके लिए हमारे व्यापारी स्तेय (लूट-खसोट) को बढ़ने दो। दक्षिण

अमेरिकाकी खानें और अन्य व्यापार सभी हमारे हाथमें हैं। इसी प्रकार हम चीनका व्यापार अपने कब्जेमें करना चाहते हैं और चाहते हैं कि सारी दुनियापर हमारा प्रभाव रहे। इसमें यदि तुम बाधा डालोगे तो डेमॉक्रसीके नामपर तुम लोगोंपर परमाणु बम गिरनेमें देरी नहीं लगेगी। जो कुछ धर्म है वह हमारी डेमॉक्रसी (जनतंत्र) में ही है।"—ऐसी डेमॉक्रसीसे सारे संसारके लोगोंको सावधान करना विचारकोंका कर्तव्य है।

अस्तेय

यह तो सभी मानते हैं कि दूसरोंकी चीजें चुराना अथवा लूटना निषिद्ध है। चोर या लुटेरे अपनी करतूतका समर्थन नहीं कर सकते परंतु व्यापारियों द्वारा की जानेवाली लूट-खसोटकी बात ऐसी नहीं है। अधिकारियोंको रिश्वत देकर या अन्य उपायोंसे यदि कोई बहुत-सी संपत्ति प्राप्त करता है तो सभी उसकी प्रशंसा करते हैं। अमेरिकामें ऐसे व्यक्तिको 'कैप्टन ऑफ इन्डस्ट्री' (व्यवसायपति) कहते हैं। और यदि यह व्यक्ति थोड़ा-बहुत दान-धर्म करे तो फिर उसकी स्तुतिकी कोई हद ही नहीं रहती। ऐसे समाजमें अस्तेय व्रत कैसे आ सकता है? व्यापार और सट्टा करके अगर होशियार लोग पैसा कमाने लगें और दूसरे लोग उनकी तारीफोंके पुल बाँधने लगें, तो वह समाज कभी अस्तेयव्रती नहीं बन सकता। इस व्यापारके लिए असत्य अवश्य चाहिए और जब परिग्रह ही न करना हो तो व्यापारकी ज़रूरत ही क्या है? एक बार परिग्रह हो जानेपर उसकी रक्षाके लिए हिंसा ज़रूर चाहिए। और यह आसानीसे की जा सके, इसके लिए डेमॉक्रसी जैसे ढोंग करने चाहिए। अर्थात् स्तेय एवं असत्यसे परिग्रह आता है और परिग्रहकी

रक्षाके लिए हिंसा एवं असत्यकी ज़रूरत आ पड़ती है। इस प्रकार यह दुष्टचक्र (Vicious Circle) लगातार चलता रहेगा।

अपरिग्रह

कुछ लोग सर्वसंग छोड़कर अपरिग्रही बनें और कुछ लोग तलवार या व्यापारके बलपर मालदार बनकर इन अपरिग्रही लोगोंको पोसते रहें, यह तो अपरिग्रहका विपर्यास है। सारे समाजके अपरिग्रही बने बिना समाजका हित होना असम्भव है। ऐसे अपरिग्रही समाजका निर्माण रूसमें हो रहा है; और अपने देशके आसपासके इलाकोंमें भी ऐसे ही समाजका निर्माण करनेका प्रयत्न सोवियत नेता कर रहे हैं। पर अंग्रेज और अमेरिकन धनिकोंको यह पसन्द नहीं है; इसलिए वे सोवियत राजनीतिज्ञोंको परास्त करनेकी चेष्टा कर रहे हैं।

विशेष प्रयत्नोंके बिना हिन्दुस्तानका राज मिलनेपर अंग्रेजोंने भूमध्यसागरपर अपना प्रभाव प्रस्थापित करनेका प्रयत्न किया, जिब्राल्टर और माल्टापर कब्ज़ा कर लिया और मिस्रको अपना मातहत बना लिया। फिर पूर्व एशियामें बर्मा, मलाया आदि देश जीत लिये। अमेरिकाने एकके बाद एक यूरोपीय राजाओंको दक्षिण अमेरिकासे निकाल दिया और अन्तमें क्यूबा टापूकी रक्षाके लिए जाकर, स्पेनसे फिलिपीन टापू भी जीत लिये। इन सारी करतूतोंको अमरीकी लोगोंने 'मनरो डॉक्ट्रीन' (मनरोका सिद्धान्त) का सुंदर नाम दिया, पर जब सोवियत रूस आत्मरक्षाके लिए ही अपने आसपासके राज्योंमें साम्यवादी शासनप्रणाली प्रस्थापित करना चाहता है तो अपने साम्राज्यकी डींग हाँकनेवाले अंग्रेज़ और मनरो डॉक्ट्रीनका जप करनेवाले अमेरिकन एकदम चिल्लाने लगते हैं कि सोवियत अपना विस्तार (Expansion) करना चाहता है! "यदि तुम औरोंके देशमें जाकर

उनपर अपना प्रभाव या अधिकार लादते हो, तो सोवियत सरकार आस-पासके देशोंमें साम्यवादका प्रसार करती है, तो उसमें तुम्हारा क्या जाता है?" "हमारा क्या जाता है? वाह! अगर धीरे धीरे कम्यूनिज्मका प्रसार होता जाय, तो फिर हमारा साम्राज्य और हमारा मनरो डाक्ट्रीन कैसे टिक सकता है? क्या यह साम्यवाद हमारे दरवाजोंपर नहीं आ धमकेगा? इसीलिए आवश्यकता पड़नेपर परमाणु बमोंसे भी कम्यू-निज्मका प्रतिकार करनेको हम तैयार हैं। और यदि हमारे मजदूरोंका डर हमें न होता तो हमने यह काम कभीका शुरू कर दिया होता!"

परंतु जब तक सारी दुनियाके राष्ट्रोंमें सोवियत समाज जैसा समाज-निर्माण नहीं होगा, तब तक संसारको लड़ाइयोंसे मुक्ति नहीं मिलेगी। जब सारे राष्ट्र अपरिग्रही बनेंगे तभी संसारमें अहिंसा और सुख-शान्ति आएगी।

ब्रह्मचर्य

कुछ साधु ब्रह्मचारी रहें और राजा-महाराजा चाहे जितनी स्त्रियाँ और वेश्याएँ रखें तो ऐसे ब्रह्मचर्यसे समाजको विशेष लाभ नहीं हो सकता, यह बिल्कुल स्पष्ट है। सभी जानते हैं कि वेश्याओं और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले पुरुषोंके द्वारा समाजमें भयंकर रोग फैलते हैं। यह जानकारी स्वयं वेश्याओं और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले अज्ञ पुरुषोंको करा देनेके लिए सोवियत रूसमें तरह-तरहसे प्रचारकार्य जारी है। जब तक बहुपत्नीत्व और वेश्या-व्यवसायका निर्मूलन समाजमेंसे नहीं हो जाता, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि समाजको ब्रह्मचर्यका भान हुआ है।

एकपत्नी-व्रतमें भी विषय-सेवनका अतिरेक नहीं होना चाहिए। आजकल शिक्षित लोग अधिक सन्तानें नहीं चाहते। एक-दो बच्चे

होनेपर वे संतति-निरोध करने लगते हैं। इस संतति निरोधमें सबसे बड़ा खतरा यह है कि उससे स्त्री पुरुषोंकी कामतृष्णा कम होनेके बजाय बढ़ती जाती है और उसके कारण मन और शरीरपर बुरे परिणाम होते हैं। इससे यह अच्छा है कि लोकोपयोगी कामोंमें दक्ष रहकर स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्यके पालन करनेका अभ्यास करें। इस ब्रह्मचर्यकी शिक्षा युवक-युवतियोंको अवश्य दी जानी चाहिए।

यद्यपि इस व्रतका उपदेश पार्श्वनाथने नहीं दिया है, तथापि उनके अपरिग्रह याममें इसका समावेश हो जाता है।

अन्य व्रत

जैनोंके आगम ग्रन्थोंमें ही यह बताया गया है कि पार्श्वनाथने केवल चातुर्याम धर्मका उपदेश दिया है, फिर भी हेमचन्द्राचार्यने उनके उपदेशमें ब्रह्मचर्य ही नहीं, बल्कि और भी सात व्रतोंको जोड़ दिया है। वास्तवमें देखा जाय तो चार यामोंका यथार्थ अर्थ समझकर अभ्यास करनेवालेके लिए ये व्रत बेकार हैं। उदाहरणके लिए, दिग्विरति एवं देशविरतिको ही लीजिए।* जो व्यक्ति चातुर्याम धर्मका ठीक तरहसे पालन करेगा उसे ऐसा नियम करनेकी क्या आवश्यकता है कि मैं 'अमुक दिशामें या अमुक प्रदेशमें नहीं जाऊँगा'? बल्कि यह नियम समाजके लिए घातक साबित होगा, क्योंकि यामोंका पालन करनेवाला व्यक्ति जिस जिस दिशा और जिस जिस प्रदेशमें जाएगा, उस-उस दिशा और प्रदेशमें अपने उदाहरणसे चातुर्यामका महत्त्व औरोंको समझा देगा। सब दिशाओं और सब प्रदेशोंमें जाकर चातुर्याम धर्मका प्रचार करना उसका कर्तव्य होते हुए भी वह ऐसे नियमोंमें फँस जाय, तो क्या वह अनुचित नहीं होगा?

* देखिए, पृष्ठ १०।

सौभाग्यसे बौद्ध धर्ममें ऐसे नियम या व्रत नहीं हैं। इसी लिए वह धर्म इतना फैल गया। जैनोंने ऐसे व्रत करके अपने धर्मको ही नहीं बल्कि हिन्दुओंकी संस्कृतिको भी संकीर्णता प्रदान की। 'अटकके उस पार नहीं जाना चाहिए' अथवा 'समुद्रपर्यटन नहीं करना चाहिए' जैसे आत्मघातकी नियम ऐसे व्रतोंमेंसे ही निकले। जैनों द्वारा बहुत ज्यादा महत्त्व दिये जानेके कारण ही सम्भवत ये व्रत चले।

शरीर-श्रम

शरीर-श्रमको जैन और बौद्ध ग्रन्थोंमें महत्त्व नहीं दिया गया है। इन सम्प्रदायोंके साधु अत्यन्त पराधीन होते हैं। वे न तो जमीन खोद सकते हैं, न पेडकी छोटी-सी टहनी काट सकते हैं, न रसोई बना सकते हैं, और न घर या कुटिया ही बना सकते है। इन सभी बातोंमें उन्हें अपने-अपने उपासको या श्रावकोंपर निर्भर रहना पडता है। इन सब कामोमें जो छोटे-मोटे प्राणियोंकी हिंसा होती है, उसे गृहस्थोंसे करवाने पर पाप नहीं लगता, स्वय करने पर ही पाप लगता है, ऐसा उनके कर्मकाण्ड (विनय)का मत दिखाई देता है। इन दो धर्मोंकी अवनतिके जो अनेक कारण हुए, उनमें यह एक प्रमुख कारण समझना चाहिए। इससे जैन साधुओं और बौद्ध भिक्षुओंमें आलस्य या सुस्ती शीघ्र ही बढ गई और वे समाजके लिए बोझ बन गये। ऐसे लोगोंके सम्प्रदाय राजाओं और अमीरोंकी खुशामद किये बिना नहीं चल सकते।

महावीर और बुद्धके समयमें ये श्रमण सब बहुत छोटे थे और वे सालमें आठ महिने लगातार प्रचार कार्य करते हुए घूमते थे। अत उनके मार्गमें ये बन्धन बाधक न बन सके। मगर जब यही सब बडे-बडे विहारो और उपाश्रयोंमे रहने लगे, तब उनकी सुस्ती जन-साधारणको महसूस होने लगी और उन्हें राजाओं और धनवानोंपर

निर्भर रहना पड़ा। अतः जब ये संप्रदाय लुप्तप्राय हुए तो सर्व सामान्य लोगोंको उनके लिए बिलकुल दुःख नहीं हुआ।

ईसा मसीहके लगभग सभी शिष्य शरीरश्रम करनेवाले थे। उस संप्रदायमें शरीरश्रमका निषेध कभी नहीं किया गया। परंतु पादरी लोग राजाश्रित बनकर परिग्रही हो गये और पोपसाहबने तो राजसत्ता हथियानेमें भी आनाकानी नहीं की। इससे ईसाई धर्म अप्रिय होता गया और फिर उसे धीरे-धीरे आजकी हालत प्राप्त हुई।

शरीरश्रमको सोशलिस्टोंने अत्यंत महत्त्व दिया है। उनका यह सिद्धान्त है कि, 'जो काम करेगा, उसीको अन्न मिलेगा।' टॉलस्टायने इस सिद्धान्तको धर्ममार्गमें चरितार्थ करके बताया। अपनी ढलती उम्रमें लिखे हुए लेखोंमें टॉलस्टायने यह अच्छी तरह विशद करके दिखाया है कि आध्यात्मिक उन्नतिके लिए शरीरश्रमकी अत्यंत आवश्यकता है। यही सिद्धान्त महात्मा गाँधीने अपनी प्रवृत्तियोंको लागू किया। इतिहाससे यह बात सिद्ध होती है कि शरीरश्रमके बिना चातुर्याम धर्म टिकाऊ नहीं हो सकता। जब तक शरीरश्रम न करनेवाला धनिकवर्ग और उस वर्गपर जीनेवाले धर्मोपदेशक और अध्यापक दुनियामें मौजूद हैं तब तक सामान्य जनताके सुख-सन्तोषकी आशा करना व्यर्थ है। ये लोग जनतंत्र, धर्म आदि नामोंसे श्रमजीवियोंको रास्ता भुलाकर युद्धकी खाईमें धकेले बिना नहीं रहेंगे। इन आलसी लोगोंका उचाटन सोवियत रूसकी तरह करना हमारे लिए संभव नहीं है, क्योंकि हमारा साधन शस्त्र नहीं बल्कि अहिंसा है। परंतु प्रचारके शस्त्रका प्रयोग हम कर सकते हैं और वह शस्त्रोंसे भी अधिक प्रभावकारी होता है।

इतिहासकी शिक्षा

आजकल स्कूलों और कालेजोंमें इतिहासकी जो शिक्षा दी जाती है वह बेकार है; इतना ही नहीं बल्कि कभी-कभी बाधक भी होती है। फलाँ राष्ट्र या व्यक्तिने ऐसे ऐसे पराक्रम किये। इस प्रकारके दिलचस्प वर्णन पढ़ या सुनकर विद्यार्थियोंका गुमराह हो जाना बिलकुल स्वाभाविक है। इन पराक्रमोंका परिणाम क्या है, इसका स्पष्टीकरण होना नितांत आवश्यक है। सिकन्दरके नेतृत्वमें ग्रीक लोगोंने ऐसे पराक्रम तो किये, पर उनका परिणाम क्या हुआ, इसका विचार करना क्या जरूरी नहीं है? उन पराक्रमोंसे अन्य देशोंको तो दुःख भुगतने ही पड़े, पर क्या यूनानियोंकी उनसे उन्नति हुई? क्या उनकी दुर्गतके ये ही पराक्रम कारण नहीं हुए? यूनानियोंने जिस साहित्य और कलाका निर्माण किया, उसका कोई सम्बन्ध इन पराक्रमोंके साथ नहीं था। आज यूनान देशकी हालत बहुत गिरी हुई है, फिर भी यूनानियोंके पूर्वजों के साहित्य एवं कला-कौशलकी तारीफ सब जगह होती है।

ग्रीकों (यूनानियों) के बाद रोमन आए। उन्होंने लगभग सारा यूरोप और अफ्रीकाका उत्तरी किनारा जीत लिया। पर अन्तमें क्या रहा? उनका पराक्रमी वर्ग पूरी तरह नष्ट हो गया और केवल गुलाम शेष रह गये। रोमन लॉ (कानून) का जो विकास उन्होंने किया, उसकी स्तुति आज भी सर्वत्र होती है, और वर्तमान यूरोपीय कानून उसीपर आधारित है। परन्तु इस रोमन कानूनका रोमन लोगोंकी विजयके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्होंने अन्य राष्ट्रोंको जीता न होता, तो भी उनका कानून लोकप्रिय हुआ होता।

उसके बाद अर्वाचीन कालमें स्पेनका उदय हुआ। पराक्रमी स्पेनिश लोगोंने उधर दक्षिण अमेरिका और इधर फिलिपीन टापुओंमें अपने

हाथ-पाँव फैला दिये। पर अन्तमें क्या बचा? यही आजकलका मैल्कोका स्पेन!

अंग्रेज़ लोग स्पेनके लोगोंसे आगे बढ़ गये। उधर अमेरिकामें उन्होंने शक्तिशाली उपनिवेश क़ायम किया और लगभग आधा अफ़रीका और एशियाका काफ़ी हिस्सा अपनी छत्रछायामें ले लिया। पर इन सारे पराक्रमोंसे इंग्लैंडका क्या हित हुआ? बस यही कि, धनिकवर्ग अधिक मालदार बना और मज़दूरोंको थोड़ा अधिक वेतन मिल गया। परन्तु इतनेसे लाभके लिए उन्होंने खानोंके रूपमें अपने देशको खोद डाला और दुनियाके सुंदर अरण्योंको नष्ट कर दिया। अब क्या बचा है? केवल ऋणग्रस्तता! जिन उत्तर अमरीकियोंका वे मज़ाक उड़ाते थे उन्हींका सहारा लेकर उन्होंने किसी तरह अपने साम्राज्यको सँभाल रखा है। पर यदि आप पूछेंगे कि इससे क्या लाभ हुआ, तो कोई इसका ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे सकेगा।

नेपोलियनके नेतृत्वमें फ्रान्सीसियोंने अनेक पराक्रम किये; उनका सिक्का समूचे यूरोपपर जम गया। पर नतीजा क्या हुआ? फ्रान्सीसियोंका ही अनुकरण करके जर्मनीने फ्रान्सको परास्त किया और आज फ्रान्स देशकी स्थिति बहुत दयनीय हो गई है।

हमारे बचपनमें मराठोंके इतिहासकी बड़ी चर्चा थी। एक राजनीतिक शूर कविकी कविताकी दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—'तुम्ही ते मराठे, तुम्ही ते मराठे। तुम्ही चारिले सर्व शत्रूंस काँटे।' (अर्थात् तुम वही मराठे हो जिन्होंने अपने सारे दुश्मनोंको काँटे खिला दिये। अर्थात् बुरी तरह हरा दिया।) 'मराठे' के साथ 'काँटे' का तुक तो जम गया और इससे मराठोंको प्रोत्साहन भी मिलता होगा। पर उससे फ़ायदा क्या हुआ? शत्रुओंको काँटे खिलानेवाले मराठे आज क्या कर रहे हैं?

बम्बईकी गदी इमारतोंमें भीड करके और दिनभर या कभी कभी रातभर मिलोंकी दम घोंटनेवाली हवामें काम करके किसी तरह दिन बिता रहे हैं।

सारांश यह कि, शस्त्रबलसे औरोंको जीतकर जो अपनी आजीविका चलाना और मौज उडाना चाहते हैं, उनकी करतूतोंके ज़हरीले फल खानेकी नौबत उनके वंशजोंपर आये बिना नहीं रहती। जैसा कि धम्मपदमें कहा गया है,

> मधुवा मञ्ञती बालो याव पापं न पच्चति।
>
> यदा च पच्चती पापं (अथ) बालो दुक्खं निगच्छति॥

[अर्थात् जब तक पाप पक नहीं जाता तबतक वह मूर्खको मधुके समान मीठा लगता है, पर जब वह पक्व होता है, तब मूर्ख दुःख भोगता है।]

प्रारम्भमें हिंसात्मक पराक्रम मीठे लगते हैं तो भी परिणामतः वे अत्यंत दुःखद हो जाते हैं।

किसी भी लाभकी आशा रखे बिना दूसरे देशोंमें जाकर धर्मोपदेश करनेका एक मात्र उदाहरण हमारे इतिहासमें प्राचीन भिक्षुओंका है। ये उपदेशक पूर्वके सभी देशोंमें गये। यहाँ हमें इसकी चर्चा नहीं करनी है कि उनके उपदेशका परिणाम क्या हुआ, पर उनके उद्योगसे एक महान् लाभ यह हुआ कि चीन, तिब्बत आदि देशोंमें हमारे सम्बन्धमें आदर बढ़ गया। कोई भी कार्य निरपेक्षतासे परोपकारकी दृष्टिसे किया जाय तो उसका परिणाम मीठा होना ही चाहिए। जर्मन वैज्ञानिकोंने इसी निरपेक्ष बुद्धिसे रूसियोंकी मदद की होती, तो आज इन दो जमातोंमें जो वैर दिखाई देता है वह न रहता और जर्मनोंको अपना गुरु मानकर रूसियोंने उनका बहुत आदर किया होता। इससे दोनों महासमर टल जाते, इतना ही नहीं बल्कि, संसारके सुखमें भारी वृद्धि होती। परन्तु,—

परदुक्खूपदानेन अत्तनो सुखमिच्छति ।
वेरसंसग्गसंसट्ठो वेरा सो न पमुच्चति ॥

(अर्थात् दूसरोंको दुःख देकर जो अपने सुखकी इच्छा करता है, वह वैरमें फँस जाता है, वैरसे मुक्त नहीं होता।)—यह उपदेश यूरोपीय राष्ट्रोंको कभी नहीं जँचा, और उसका फल आज उन्हींको नहीं बल्कि सारी दुनियाको भुगतना पड रहा है।

सारांश, हिंसा, असत्य, स्तेय एवं परिग्रहसे किसी भी राष्ट्रका हित हुआ हो, ऐसा प्रमाण इतिहासमें नहीं मिलता। वर्तमान उलझनों और अत्यन्त जटिल परिस्थितियोंमेंसे बाहर निकलनेके लिए सब राष्ट्रोंके सामने यही एकमात्र उपाय है कि वे अपनी नीतिको इस चातुर्यामकी कसौटीपर कसकर देखें। हम शस्त्रास्त्रोंके द्वारा हिंसाकी तैयारी कर रहे हैं या नहीं? अन्य राष्ट्रोंको ठगनेके लिए हम असत्यके प्रयोग करते हैं या नहीं? दूसरे राष्ट्रोंको लूटकर यानी स्तेय द्वारा हम सम्पत्ति जमा करते हैं या नहीं? और हमारे परिग्रहके कारण हमें इस पापका और अन्य पापोंका अंगीकार करना पडता है या नहीं? इसका विचार सभी राष्ट्रोंके नेताओंको अवश्य करना चाहिए। इस चातुर्यामकी कसौटीपर यदि उनके कार्य खरे उतरें तो संसारके बहुतसे दुःख दूर होंगे और सब राष्ट्रोंमें सुख एवं शांतिका निवास होगा।

मज्झिम निकायके सल्लेख सुत्तमें भगवान् बुद्धने कहा है कि, "हे चुन्द, विषम मार्गमेंसे मुक्त होनेके लिए जैसे कोई सरल मार्ग हो वैसे ही विहिंसक मनुष्यको मुक्तिके लिए अविहिंसा है अदत्तादान (चोरी या लूट) करनेवालेके लिए दत्तादान मुक्तिमार्ग है असत्यवादी मनुष्यके लिए सत्य मुक्तिमार्ग है लोभी मनुष्यके लिए निर्लोभ मुक्तिमार्ग है।"

जो न्याय यहाँ व्यक्तिपर चरितार्थ होता है वही समाज और राष्ट्रपर चरितार्थ होता है।

धार्मिक कसौटी

चातुर्याम धर्मकी कसौटी ही सच्ची धर्मकी कसौटी है। यदि आप धर्मके लिए युद्ध या अदालतोंमें नालिशें करने लगें तो कहना पड़ेगा कि चातुर्याम धर्म आपके गले नहीं उतरा है। धर्मके लिए झूठ बोलकर या व्यापारी लूट करके आप पैसा कमाने लगेंगे तो कहना पड़ेगा कि आप इन चातुर्यामोंसे बहुत दूर चले गये हैं। मन्दिर या मस्जिदें बनानेके लिए और उन्हें बनाये रखनेके लिए आप सम्पत्तिका संग्रह करने लगें तो कहना पड़ेगा कि आप अपरिग्रहका तत्त्व ही नहीं समझे हैं।

यहाँ कोई धनवान् हमसे पूछेगा कि, "अजी, आप तो गरीब कुलमें पैदा हुए हैं, अतः यह ठीक है कि आपको चातुर्याम धर्म पसन्द आया। पर हमारे हाथमें कुछ भी परिश्रम किये बिना यह सारी सम्पत्ति आई है, उसे छोड़कर हम अपरिग्रही बनें तो क्या यह मूर्खता नहीं होगी? मान लीजिए कि हम अपनी सम्पत्ति आज ही गरीबोंमें बाँट दें, तो क्या उससे सारा समाज अपरिग्रही बन जायगा? फर्क केवल यही होगा कि हमारे स्थानपर दूसरे परिग्रही लोग आ जाएँगे।" इसपर हमारा उत्तर यह है कि, यह तर्क तो चोर भी पेश कर सकते हैं। कोई चोर पूछेगा कि, 'आप मुझे चोरीसे निवृत्त होनेको कहते हैं, पर क्या उससे समाजमेंसे चोरीका नाश हो जायगा? मेरे स्थानपर दूसरा कोई चोर आ जायगा।' अतः सवाल यही रहता है कि आपकी सम्पत्तिका बँटवारा कैसे किया जाय। उसे गरीबोंमें बाँट देनेकी अपेक्षा उसका उपयोग समाज कार्यमें करना अच्छा होगा। इस कार्यकी कसौटी यही है कि उससे समाज अहिंसक, सत्यवादी, अस्तेयी और अपरिग्रही बनना

चाहिए। इस कसौटीपर आजकलका दान-धर्म शायद ही खरा उतरता है। यह समझना ग़लत है कि ट्रस्टके द्वारा लाखों रुपये किसी सार्वजनिक कार्यके लिए रख देनेसे समाजकी उन्नति होगी।

तो फिर ऐसी संपत्तिका विनियोग कैसे किया जाय ? उसका उपयोग इस तरह किया जाय कि जिससे समाज तुरन्त चातुर्याम धर्मके अनुसार आचरण करने लगे। आजकल जो ट्रस्ट किये जाते हैं उनसे समाज कभी अपरिग्रही नहीं बन सकता। इस ट्रस्टकी निधिको जो व्याज मिलता है वह समाजपर एक स्थायी बोझ बन जाता है। और कई जगह ट्रस्टी लोग अपने स्वार्थके लिए ही उस निधिका इस्तेमाल कर लेते हैं। राजकोटके ख्यातनामा बैरिस्टर श्री सीताराम नारायण पंडित कहते थे कि, "ट्रस्टपर मेरा विश्वास नहीं है। ट्रस्टके कई मामले मैंने अदालतमें चलाए और उनमें मैंने देखा कि ट्रस्टके पैसेका दुरुपयोग किया जाता है। अतः मैं अपने दान-धर्ममें यह सावधानी रखता हूँ कि सारा पैसा मेरी जिन्दगीमें ही अच्छे काममें लग जाय।" अन्य लोग इससे सबक सीख सकते हैं। यदि आप समाजको हिंसा, असत्य, चोरी और परिग्रहसे छुडाना चाहते हैं तो आप अपनी सम्पत्ति 'अहिंसामार्गी सोशलिज्म' के प्रचारके लिए दे दें और ऐसा प्रबंध करें कि उसका विनियोग तुरन्त किया जायगा।

सोशलिस्ट लोग हिंसात्मक क्रान्तिको महत्त्व देते हैं; ऐसी हालतमें क्या उनकी मदद करना चातुर्यामके लिए असंगत नहीं है ? यह बात सही है कि बहुतसे सोशलिस्ट अंधानुकरण करनेवाले हैं और उन्हें ऐसा लगता है कि जो बात रूसमें हुई वही यहाँ होनी चाहिए, पर वे पिछले पचीस वर्षोंमें महात्मा गाँधी द्वारा किये गए आन्दोलनका ठीक निरीक्षण कर देखें। यदि हमने हिंसा और असत्यका मार्ग अपनाया

होता, तो क्या अल्प परिश्रमसे हमारी इतनी प्रगति हुई होती सोशलिज्मके प्रसारके लिए हिंसाकी आवश्यकता नहीं है, उसके लि तो किसानों और मजदूरोंका संगठन चाहिए, और वह पूर्णतया सन्मार्ग किया जा सकता है। जो कोई अपनी सम्पत्ति इस कामके लिए देगा, उसे इतनी सावधानी अवश्य लेनी चाहिए कि उसका उपयोग सन्मार्गसे और सत्कार्यमें किया जायगा।

हम जैसे गरीब कुलमें जन्म पाये हुए लोगोंके लिए चातुर्याम धर्मक अंगीकार करना सुलभ है। अंधश्रद्धा, विलास और मान सम्मानर्क अभिलाषा ही हमारे मार्गमें बाधा डालनेवाले दुर्गुण हैं। हमारे पूर्वज जिन देवताओंकी पूजा करते थे वे सब हिंसक हैं। फिर भी हम केवल अंधश्रद्धाके कारण उनकी भक्ति कर रहे हैं। हम पैसेके पीछे क्यों पड़ें? इसीलिए कि हम और हमारे बाल-बच्चे मौज उड़ाएँ और लोगोंमें मान-सम्मान प्राप्त करें।

चातुर्याम ही हमारा देवता है

ऐसे किसी भी दुर्गुणके चंगुलमें न फँसकर हम—गरीब और अमीर—यह जान लें कि चातुर्याम धर्म ही हमारा देवता है, और इसके लिए काया, वाचा, मनसे प्रयत्नशील रहें कि लोगोंमें इस देवताके प्रति भक्ति बढ़े और उसके द्वारा लोग सुख शांतिके साथ रहने लगें। चातुर्याम धर्म ही सच्चा चतुर्मुख ब्रह्मा है और उसकी आराधनामें ही हमारा तथा दूसरोंका मोक्ष है। इस चातुर्याम—धर्मरथके अहिंसा आदि चार पहिये हैं। उनमें कुछ न्यूनाधिक हो जाय या उनमेंसे कोई पहिया टूट जाय तो यह धर्मरथ नहीं चल सकेगा। अतः केवल श्रद्धापर आधार न रखकर इन चार पहियोंका बार बार निरीक्षण करके हमें ऐसा सतत प्रयत्न करना चाहिए कि वे अव्याहत चलते रहें। यही सच्चा कर्मयोग है।

मारणान्तिक सल्लेखनाव्रत

जैनोंके जो अनेक व्रत हैं उनका चातुर्यामकी अभिवृद्धिके लिए शायद ही उपयोग होता है। इन तपोंका आचरण किये बिना चातुर्याम धर्मकी अभ्युन्नति की जा सकती है। इन तपोंमेंसे एक ही तप या व्रत ऐसा है कि जिसका यथोचित पालन करनेसे वह व्यक्ति एवं समाजका हित करेगा। वह है सल्लेखना व्रत। वह केवल असाध्य रोगियों और जरा-जर्जरितोंके लिए है। अमीरोंको पक्षाघात या कैन्सर जैसा कोई असाध्य रोग हो जाय तो वे बिछौनेमें छटपटाते रहते हैं और उनकी शुश्रूषा और दवाके लिए हजारों लाखों रुपये खर्च किये जाते हैं। स्वयं उन्हें और उनके रिश्तेदारोंको ऐसा लगता है कि उनका शीघ्र देहान्त होकर वे उन यन्त्रणाओंसे मुक्त हो जायँ। परन्तु ऐसे अवसरोंपर उन रोगियोंको उपवास करके रोगसे मुक्त होनेकी इच्छा नहीं होती और उनके रिश्तेदारोंको भी वह मार्ग पसन्द आएगा ही, ऐसा नहीं कहा जा सकता। सल्लेखना व्रतका महत्त्व यदि सर्वसम्मत हो जाय तो ऐसे प्रसंग आसानीसे टाले जा सकेंगे।

इस व्रतकी जानकारी ऊपर आ ही चुकी है*। असाध्य व्याधि या बुढ़ापेके कारण शरीर दुर्बल होनेपर जैन साधु और गृहस्थ मास-दो-मास तक उपवास करके प्राण त्याग देते थे। इसके अनेक उदाहरण ऊपर आ चुके हैं। स्वयं पार्श्वनाथने भी इसी विधिसे सम्मेद शिखरपर देहत्याग किया था। इसकी कथा भी ऊपर आ चुकी है×।

इस व्रतको अपनानेके लिए पहलेसे तैयारी करनी चाहिए। युवावस्थामें ही मनुष्यको ऐसा विचार करना चाहिए कि मेरा यौवन

* देखिए, पृष्ठ ४९। × देखिए, पृष्ठ १२।

स्थायी नहीं है—या तो असाध्य रोग उसे निगल जायगा या बुढापेसे वह नष्ट होगा। ऐसे अवसर पर मुझे खुशीसे यह शरीर मृत्युके हवाले कर देना चाहिए। इससे मेरा और मेरे आप्त-मित्रोंका दुःख बहुत कम हो जायगा। इस संशयको मनमें बनाये रखनेसे मनुष्यके हाथों बुरे काम भी नहीं होंगे।

पार्श्वनाथसे पहले और उनके समयमें गृहस्थ लोग वृद्ध होनेपर गृहत्याग करके अरण्यमें जाते और वहाँ अनशन करके प्राण त्याग देते थे। इसका एक उदाहरण महाजनक जातकमें मिलता है। जब जनक राजा वृद्ध हुआ तो उसने गृहत्याग किया। उसे वापस लौटानेके अनेक प्रयत्न उसकी सीवली रानीने किये। परंतु पीछे न मुड़कर जनकने हिमालयका मार्ग पकड़ा। सीवली उसके साथ चली। अन्तमें वे दोनों एक छोटे-से शहरके बाहर आये। वहाँसे दो रास्ते थे। वहाँपर जनकने सीवलीसे कहा,

अयं द्वेधापथो भद्दे अनुचिण्णो पथाविहि।
तेसं त्वं एकं गण्हाहि अहमेकं पुनापरं॥

[अर्थात् हे भद्रे, ये दो मार्ग हैं, जिनका अनुसरण पथिक करते हैं। इनमेंसे एक तुम ले लो और दूसरा मैं लेता हूँ।]

यह सुनकर सीवली बेहोश होकर वहीं गिर पड़ी और जनक हिमालयके जंगलमें चल दिये। उनके पीछे पीछे उनके अमात्य आ रहे थे। उन्होंने सीवलीको होशमें लाकर उसकी रक्षाके लिए कुछ लोग नियुक्त कर दिये और जनकको खोजना शुरू किया। परंतु उनका कुछ भी पता न चला। तब उस द्वेधापथपर जनकके स्मारकके लिए स्तूप बनाकर सीवली देवीके साथ वे मिथिला लौट आये।

पार्श्वनाथके प्रचार कार्यसे इस प्रकार हिमालयके जगलमें जानेका कोई कारण नहीं रहा। चाहे जहाँ देहत्याग करना सभव हो गया। उद्यानमें, धर्मशालामें, किसी पर्वत शिखरपर, नदीके किनारे अथवा समुद्रके किनारे, जहाँ अपना मन प्रसन्न रहे ऐसे स्थानमें निवास करके अनशनव्रत करना रोगग्रस्तो और जराग्रस्तोंके लिए सुलभ हो गया। लोगोंकी सहानुभूति इस व्रतको प्राप्त होने लगी।

आजकल भी जैन साधु ओर गृहस्थ इस व्रतका कभी-कभी प्रयोग करते हैं, पर उसे एक विलक्षण स्वरूप प्राप्त हो गया है। किसी साधु या गृहस्थके द्वारा इस व्रतका आरभ किये जानेकी खबर सुनते ही सैकडो जैन लोग उसके दर्शनोंके लिए आते है ओर उस व्रतस्थको वह शाति बिलकुल नहीं मिलती जो ऐसे अवसरोंपर मिलनी चाहिए। अत इस व्रतको इतना महत्त्व देकर उसका ढिंढोरा पीटना उचित नहीं है। जहाँ तक हो सके, ऐसे व्रतस्थको शाति मिलने दी जाय। यदि उसके लिए भूखकी वेदनाएँ असह्य हो जायँ तो क्या किया जाय ? उसे दवा या इजेक्शन देना जैन लोग अनुचित समझते हैं। पर मेरे मनमे उसे शात रखनेके लिए जरूरी औषध-उपचार किये जाने चाहिए।

अब हम इसका विचार करे कि इस व्रतसे समाजको क्या लाभ पहुँच सकता है। असाध्य रोग और जरासे मुक्त होनेके लिए इस व्रतका आचरण आम बात हो जाय तो उसके कारण समाजका काफी खर्च बच जाएगा। आज ऐसे रोगग्रस्त अमीरो और गरीबोंपर समाजका बहुत-सा पैसा खर्च होता है। फिर भी ऐसे लोगोंको मार डालना समाजके लिए सभव नहीं है। अमीरोंको उनके घरमें और गरीबोंको अस्पतालमें तकलीफ भुगतनेके लिए रहने देना पड़ता है। कुष्ठ रोगियोंको तो जबर्दस्ती समाजसे दूर रखकर उनके पालन-पोषणका

सारा भार समाजको उठाना पडता है। ऐसे रोगी एवं जरा जर्जरित व्यक्ति स्वेच्छासे अनशनव्रतका स्वीकार करें तो इसमें शक नहीं कि समाजका बोझ कम होगा। और ऐसे लोग लुप्त हो जायँ तो समाज भी प्रफुल्लित होगा।

उपसंहार

चातुर्याम धर्मका उद्गम ऋषि-मुनियोंके अहिंसा-धर्ममेंसे हुआ और पार्श्वनाथने उसे प्रचलित किया। बुद्धने उसमें समाधि एवं प्रज्ञाको जोड़कर उसका विकास किया। ईसा मसीहने यहूदियोंके यहोवा (जेहोवा) के आधारपर इसी धर्मका प्रचार पश्चिममें किया। उसमें शरीरश्रमको जोडकर सत्याग्रहके रूपमें राजनीतिक क्षेत्रमें भी वह कैसे प्रभावशाली किया जा सकता है, यह महात्मा टॉलस्टायने विशद करके दिखाया; और महात्मा गाँधीने उसके प्रत्यक्ष प्रयोग करके यह दिखला दिया कि वह सफल हो सकता है। अत पार्श्वनाथ, बुद्ध, ईसा, टॉलस्टाय और गाँधी इस चातुर्याम धर्मके मार्गदर्शक हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि उनके परिश्रम पूर्णतया सफल हुए हैं। जैन, बौद्ध एवं ईसाई लोगोंमें भी हिंसाधर्मपर श्रद्धा रखनेवालोंकी संख्या बहुत बड़ी है; और उन्हें उन्हींका धर्म समझा देना असंभव हो गया है। फिर भी निराश होनेका कोई कारण नहीं है; क्योंकि हमारा यह दृढ विश्वास है कि इस चातुर्याम धर्मका सर्वतोपरि विकास करनेवाले बहुतसे शास्ता (नेता) भविष्यमें पैदा होंगे। हम ऐसी प्रार्थना करते हैं कि ऐसे नेता बार बार पैदा हों और उनके प्रयत्नोंसे सारा मानव-समाज उन्नत स्थिति तक पहुँच जाए।

समाप्त